॥ श्रीः ॥

विद्याभवन संस्कृत ग्रन्थमाला
७८

प्रथमापरीक्षोपयोगी—

निबन्ध-सौरभ

लेखक—

श्री पं० बाबूलाल मिश्र

अध्यापक—रणवीर संस्कृत विद्यालय, वाराणसी





चौखम्बा विद्याभवन

वाराणसी २२१००१





॥ श्रीः ॥

विद्याभवन राष्ट्रभाषा ग्रन्थमाला

७८

प्रथमापरीक्षोपयोगी—

निबन्ध-सौरभ

लेखक—

श्री पं० बाबूलाल मिश्र

अध्यापक—रणवीर संस्कृत विद्यालय, वाराणसी



चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-२२१००१

प्रकाशक—

चौखम्बा विद्याभवन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)

चौक (बनारस स्टेट बैंक भवन के पीछे),

पोस्ट बाक्स नं० ६९

वाराणसी २२१००१

द्वितीय संस्करण १९८१

मूल्य [illegible]-००

अन्य प्राप्तिस्थान—

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)

के० ३७/११७, गोपालमन्दिर लेन

पोस्ट बाक्स नं० १२९

वाराणसी २२१००१

मुद्रक—

श्रीजी मुद्रणालय

वाराणसी

परमवैष्णव

अनन्तश्रीविभूषित

श्री महन्त खूबदास जी महाराज

के

करकमलों

में

सादर समर्पित



पूर्विका

निबन्धलेखन के पूर्व के विचार

सर्वप्रथम निबन्ध लिखने वाले विद्यार्थी को यह विचार करना चाहिए कि वह किस प्रकार का निबन्ध लिखना चाहता है या लिख रहा है। जिस प्रकार का उसका निबन्ध हो उसी प्रकार की सामग्री उसको तैयार करनी चाहिये। क्योंकि निबन्ध की जाति मालूम हो जाने पर उसकी विधि का विचार किया जायगा और उसी विधि के अनुसार उसके समाधान का भी उपाय होगा। सामान्य रूप से निबन्ध चार प्रकार के होते हैं।

१. वर्णनात्मक, २. कथात्मक, ३. विचारात्मक और ४. भावात्मक।

(१) वर्णनात्मक

वर्णनात्मक निबन्ध में उन विषयों एवं वस्तुओं का वर्णन किया जाता है जिनको या तो हम अपनी आँखों से देख चुके हैं या जिनके विषय में किसी से सुन चुके हैं या कहीं पर उनका वर्णन हमने पढ़ा है। जिसका अनुभव हम अपने मन में करते हैं उसका भी क्षेत्र वर्णनात्मक निबन्ध में ही आता है। उदाहरणार्थ किसी गाँव का वर्णन या किसी शहर का वर्णन या किसी स्थान या इमारत का वर्णन या किसी दशा का वर्णन। जैसे वाराणसी, सारनाथ, प्रयागराज, ताजमहल, धनी, निर्धन आदि।

(२) कथात्मक

कथात्मक निबन्धों में किसी घटना या किसी के जीवनचरित्र, किसी की आत्मकथा या किसी समयानुकूल परिस्थिति का वर्णन होता है, जैसे—युगपुरुष पं० जवाहरलाल नेहरू, राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी, सन् १८५७ का स्वतन्त्रता युद्ध या बेकारी की समस्या तथा खाद्य समस्या आदि।

(३) विचारात्मक

विचारात्मक निबन्ध विचार के आधार पर लिखे जाते हैं। उनके लिखने के लिये विचार एवं मनन तथा गहन अध्ययन की आवश्यकता है। ऐसे निबन्ध कठिन होते हैं। जैसे पुस्तकालय, विद्यालय, परोपकार, अवतार, व्यायाम आदि।

(४) भावात्मक

भावात्मक निबन्धों में हृदय के भावों की प्रधानता होती है। उनमें बौद्धिक विचार प्रधान नहीं होते। लेखक केवल हार्दिक भावों को ही व्यक्त करने का प्रयत्न करता है और उसी के अनुसार अपनी भाषा द्वारा विचारों को व्यक्त करता है। उसके विचारों में उसके हार्दिक भाव स्पष्ट रहते हैं। इस प्रकार के निबन्धों में रस का परिपाक सुन्दर होता है और पाठक को ऐसा आनन्द प्राप्त होता है जैसा कि कविता पढ़ने से होता है।

निबन्ध-लेखन-विधि

निबन्ध लिखते समय विद्यार्थी को यह निश्चित कर लेना चाहिये कि मैं जिस विषय पर निबन्ध लिखना चाहता हूँ वह निबन्ध-भेद की किस कोटि में आता है। उसी के अनुसार उसको निबन्ध के अंगों का विभाजन करना चाहिये।

मुख्यतः निबन्ध को तीन भागों में बाँटना चाहिये--आरम्भ, मध्य तथा अन्त : उपसंहार।

(१) वर्णनात्मक निबन्ध लिखने की विधि—यदि किसी वर्णनात्मक विषय पर निबन्ध लिखना हो तो सबसे पहले उसके प्रारम्भिक अंश पर विचार करना चाहिये। जैसे यदि 'रेलयात्रा' पर निबन्ध लिखना है तो इसका विभाजन इस प्रकार होगा :—

१—रेल-यात्रा का समय। २—कहाँ से कहाँ तक।
३—यात्रा का आनन्द। ४—उपसंहार।

उपसंहार में संक्षेप रूप से उसकी अच्छाई या बुराई का निर्देश एवं समालोचनात्मक ढंग से अपना मन्तव्य व्यक्त करते हुए विषय को समाप्त करना चाहिये। उपसंहार का निबन्ध में अधिक महत्त्व है। अतः समाप्ति बड़े ही अच्छे ढंग से होनी चाहिये।

(२) कथात्मक निबन्ध लिखने की विधि—कथात्मक निबन्ध लिखने में पूर्वोक्त निबन्ध से भिन्न सामग्री की आवश्यकता है। अतः उसका अङ्ग-विभाजन भिन्न क्रम से होगा। जैसे 'सन् १८५७ का स्वतंत्रता युद्ध' पर निबन्ध लिखना हो तो उसका कार्य-विभाजन निम्नाङ्कित रूप से होगा :—

१—युद्ध का कारण। २—युद्ध का पक्ष-विपक्ष। ३—युद्ध का फल।
४—युद्ध से हानि-लाभ। ५—उपसंहार।

(३) **विचारात्मक निबन्ध लिखने की विधि**—विचारात्मक निबन्ध लिखना कठिन है। छोटे स्तर के विद्यार्थी उसमें पूर्ण सफलता नहीं पा सकते। किन्तु यदि लिखना ही हो तो उसका विषय-विभाजन निम्नाङ्कित विधि से करना चाहिये।

जैसे यदि पुस्तकालय पर निबन्ध लिखना हो तो उसका विषय-विभाजन इस प्रकार होगा :—

१—पुस्तकालय का अर्थ। २—पुस्तकालय की आवश्यकता।
३—पुस्तकालय के भेद। ४—पुस्तकालय का महत्त्व। ५—उपसंहार।

(४) **भावात्मक निबन्ध लिखने की विधि**—भावात्मक निबन्ध लिखना सहृदय विद्वानों का ही कार्य है। यदि किसी का हृदय द्रवीभूत हो, प्राणियों की दैन्य अवस्था को देखकर वह अपनी भावना के अनुकूल उनकी परिस्थिति के चित्र को खींचना चाहता हो तो वह चाहे जहाँ से शुरू कर सकता है। जिस स्थान से वह चित्र खींचना प्रारम्भ करेगा वही स्थान उसके प्रारम्भ के लिये उपयुक्त होगा और जहाँ उसकी पूर्ति करेगा वहीं उसका सर्वजनमनोहर उपसंहार होगा। भावात्मक निबन्ध के मार्ग को सहृदय जन निश्चित करते हैं—सहृदय जनों के मार्ग को निबन्ध नहीं। वे जो लिखेंगे, जो कुछ भी कहेंगे—जो भी उनकी चेष्टायें होंगी, वही भावात्मक निबन्ध होगा।

निबन्ध और प्रबन्ध में अन्तर

सामान्य रूप से लोग निबन्ध तथा प्रबन्ध को समानार्थक मानते हैं किन्तु दोनों में परस्पर अधिक भेद हैं। निबन्ध अल्पदेशवृत्ति है और प्रबन्ध अधिकदेशवृत्ति। संक्षेप रूप में निबन्ध एवं प्रबन्ध में निम्नाङ्कित मौलिक भेद हैं :—

(१) **निबन्ध**—निबन्ध तथा प्रबन्ध दोनों ही शब्दों में 'बन्ध' शब्द मौलिक है तथा 'नि' और 'प्र' उपसर्ग रूप हैं। नि उपसर्ग का अर्थ होता है, निःशेष अर्थात् सर्वाङ्ग रूप से विषय का विवेचन। 'निःशेषेण बन्ध निबन्धः'—जिसमें सर्वाङ्ग रूप से विषय का प्रतिपादन हो।

(२) **प्रबन्ध**—प्रबन्ध शब्द में बन्ध शब्द मूल है और 'प्र' उपसर्ग है। प्र का अर्थ है प्रकृष्ट अर्थात् उत्तम। अतः प्रबन्ध शब्द का अर्थ होगा—'प्रकृष्टः बन्धः प्रबन्धः'—जिस विलेखन में प्रकृष्ट रूप से अर्थात् विविध विद्वानों के वचनों का प्रमाणपूर्वक विषय-विवेचन कर तथ्य का प्रतिपादन किया गया हो। प्रबन्ध को अंग्रेजी में थीसिस (Thesis) तथा निबन्ध को एसे (Essay) कहते हैं।

निबन्ध-सूची

॥ श्रीः ॥

निबन्ध-सौरभ



१. विद्या

(विद्याधनं सर्वधनप्रधानम्)

विद्या का अर्थ है ज्ञान। ज्ञान दो प्रकार का होता है, यथार्थ और अयथार्थ। रस्सी को देखकर रस्सी समझना यथार्थ ज्ञान है तथा रस्सी को देखकर साँप समझना अयथार्थ ज्ञान है। यथार्थ ज्ञान करानेवाली विद्या को विद्या और अयथार्थ ज्ञान करानेवाली विद्या को अविद्या कहते हैं।

विद्या का महत्त्व वेदों में भी प्रतिपादित है—वेदों में लिखा है कि 'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः'–ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं होती और ज्ञान विद्या के बिना नहीं होता, क्योंकि यथार्थ ज्ञान को उत्पन्न करनेवाली विद्या ही है, अतः ईश्वर का भी यथार्थ ज्ञान विद्या से ही होगा और उसके अनन्तर मुक्ति होगी। इसलिए मुक्ति का भी कारण विद्या ही है।

पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः।
विद्यास्थानानि वेदाश्च, धर्मस्य च चतुर्दश॥

पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र, अंग (छन्द, शिक्षा, कल्प, ज्योतिष, व्याकरण, निरुक्त ये छः वेद के अङ्ग हैं) और ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद ये चारों वेद—इस प्रकार चौदह विद्याएँ हैं, अङ्गों सहित वेद को पढ़नेवाले व्यक्ति की पूजा स्वर्ग में भी होती है, अतः विद्या का पढ़ना परमावश्यक है।

२. बुद्धि

(बुद्धिर्यस्य बलं तस्य)

मनुष्य के पास कई प्रकार के बल होते हैं। किसी के पास धन का बल, किसी के पास जन का बल, किसी के पास शरीर का बल और किसी के पास बुद्धि का बल।

ऊपर कहे हुए सभी प्रकार के बलों में बुद्धि का बल सर्वश्रेष्ठ है। बुद्धि बल का अर्थ है--बुद्धि की शक्ति से कार्य किया जाना। शरीर-शक्ति, जनशक्ति तथा धनशक्ति ने किया गया कार्य असफल हो सकता है, किन्तु बुद्धिशक्ति से किया गया कार्य कभी भी असफल नहीं होता। कहा भी है--

सुचिन्त्य चोक्तं, सुविचार्य यत् कृतं
सुदीर्घकालेऽपि न याति विक्रियाम् ॥

यहाँ सुचिन्त्य चोक्तम्, अर्थात् विचार करके कहे हुए वचन, एवं सुविचार्य यत्कृतं अर्थात् विचार कर किया गया कार्य—ये दोनों अधिक समय तक भी नष्ट नहीं होते। यहाँ चिन्तन तथा विचार दो शब्द हैं और इन दोनों शब्दों का ही कार्य बुद्धि द्वारा होता है। अतः बुद्धिमान् सर्वश्रेष्ठ है

बुद्धिबल की श्रेष्ठता को ही द्योतित करने के लिए महाकवि भारवि की यह उक्ति चरितार्थ होती है--

'सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्।'

अर्थात् सहसा किसी कार्य को नहीं करना चाहिये। सहसा किया हुआ कार्य अविवेकपूर्ण होने से विपत्तियों का कारण होता है। अतः विवेकपूर्ण कार्य करने के लिये बुद्धिबल की आवश्यकता होती है। इसलिए सभी लोगों को बौद्धिक बल अर्जित करना चाहिये।

३. भक्ति

'महनीये प्रीतिर्भक्तिः' अर्थात् महान्-विषयक प्रीति ही भक्ति है। देह, गेह एवं सांसारिक वस्तु-विषयक प्रीति लौकिक प्रेम है किन्तु महान् विषयक अर्थात् परब्रह्म या ईश्वर-विषयक प्रीति भक्ति कहलाती है। भक्ति के नौ प्रकार हैं—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं, सख्यमात्मनिवेदनम्॥

श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद-सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य, और आत्मनिवेदन। इन नौ प्रकार की भक्तियों से भक्तों के भी नौ भेद होते हैं।

भक्तिहीन मनुष्य भगवान् को प्रिय नहीं है, भगवान् भक्तिसम्पन्न व्यक्ति के वश में रहते हैं। उदाहरणार्थ, इसी युग में कुछ वर्ष पूर्व श्री गोस्वामी तुलसीदासजी की कुटिया की रखवाली भगवान् करते थे। अन्धे भक्तशिरोमणि सूरदासजी को भगवान् रास्ता दिखाते थे और महाकवि विद्यापति की सेवा भगवान् शंकर अदना के रूप में करते थे। भक्त की रक्षा भगवान् स्वयं करते हैं और ज्ञानी अपनी रक्षा स्वयं करता है। भक्त की नाव संसार-सागर से भगवान् पार लगाते हैं। भगवान् ने भी कहा है—

हम भगतन के भगत हमारे।
सुनु अरजुन परतिज्ञा मोरी यह व्रत टरत न टारे।
जो भगतन सों बैर करत है सो निज बैरी मेरौ॥
देखु विचार भगत हित कारन हाँकत हौं रथ तेरौ।

अतः भक्ति का स्थान सर्वोच्च है।

४. स्वतंत्रता दिवस

स्वतंत्रता दिवस भारतवासियों का एक राष्ट्रीय पर्व है। स्वतंत्रता दिवस हमलोग १५ अगस्त को मनाते हैं । इस दिन हमारी मातृभूमि परतंत्रता की शृङ्खला से मुक्त हुई थी और हम लोग स्वतंत्र घोषित किये गये थे। सन् १९४७ में १५ अगस्त को हमलोगों को स्वतंत्रता प्रदान की गई थी । हमलोग जैसे रामनवमी, जन्माष्टमी को भगवान् श्रीराम व श्रीकृष्ण की जन्म-तिथि मनाते हैं उसी प्रकार १५ अगस्त को स्वतंत्रता की जन्मतिथि मनाते हैं ।

हमारे यहाँ की यह प्रथा है कि किसी वस्तु को हम नाशवान् नहीं मानते । इसी की पुष्टि के लिए तथा सर्वदा विद्यमान रहने का द्योतन करने के लिए हम भगवान् का जन्म प्रतिवर्ष मनाते हैं ताकि वह प्रतिवर्ष नवीन हुआ करे, कभी भी पुराना न रहे। नई वस्तु का आनन्द एक विचित्र एवं विशिष्ट ढंग का होता है, इसलिये हम अपनी स्वतंत्रता को प्रतिवर्ष नया जन्म देते हैं ।

स्वतंत्रता का अर्थ यह नहीं कि हम स्वेच्छाचारी हों । ऐसा मानने से तो प्रत्येक व्यक्ति स्वेच्छाचारी एवं निरंकुश हो जायगा। स्वतंत्रता का पारिभाषिक अर्थ है—राष्ट्र की सरकार द्वारा संचालित नियमों के बन्धन में रहकर आचरण करना। राष्ट्र की सरकार हमलोगों द्वारा निर्मित्त होने के कारण परतंत्र नहीं होगी। इस प्रकार अपने ही नियमों द्वारा आवद्ध होकर आचरण करना ही स्वतंत्रता का मूल है। हम सब को उनका पालन करना चाहिये ।

५. संस्कृत भाषा

संस्कृत भाषा का गौरव-गान न केवल भारतीय व्यक्तियों ने ही किया है, अपितु विदेशी विद्वानों ने भी इसकी प्रशंसा मुक्त कण्ठ से की है ।

विदेशी लोगों की मान्यता है कि संस्कृत भाषा अत्यन्त ही नियम-वद्ध सुन्दरतम भाषा है। किसी भी वस्तु का वर्णन जितने सारगर्भित रूप में तथा संक्षेप में संस्कृत भाषा द्वारा किया जा सकता है, उतना किसी अन्य भाषा द्वारा नहीं। संस्कृत भाषा में दर्शन, व्याकरण, साहित्य आदि शास्त्रों का विवेचन सूत्रों की प्रणाली से किया गया है। सूत्रों की रचना संक्षेप एवं सारगर्भित प्रक्रिया को ध्यान में रखकर की गई हैं। सूत्रों की व्याख्या एवं सूत्रों के भाष्य से उनकी सारवत्ता का पता चलता है।

संस्कृत भाषा में जितनी व्याकरण की महत्ता है और जितना सुदृढ़ उसका व्याकरण है उतना किसी भाषा का नहीं। अन्य भाषाओं में भाषा सम्बन्धी नियमों के विषय में लोगों में भ्रान्ति सतत विद्यमान रहती है, किन्तु संस्कृत भाषा की विशेषता यह है कि उसमें व्याकरण सम्बन्धी कृशता है ही नहीं।

आज यद्यपि संस्कृत साहित्य के अधिकांश ग्रन्थ नष्ट-भ्रष्ट हो गये हैं, फिर भी जितना इस भाषा का साहित्य विपुल एवं समृद्ध है उतना किसी भी अन्य भाषा का नहीं। विदेशियों ने संस्कृत भाषा को ज्ञान-राशि का सञ्चित कोष कहा है। ज्ञान की गरिमा जितनी इस भाषा में है उतनी किसी भी भाषा में नहीं। अतः संस्कृत भाषा सर्वश्रेष्ठ भाषा है।

६. ब्रह्मचर्य

हमारे शास्त्रों में ब्रह्मचर्य का बड़ा भारी महत्त्व वर्णित है। इस प्रकार के कई उदाहरण मिलते हैं जिनसे ब्रह्मचर्य की अपूर्व महिमा प्रदर्शित होती है। ब्रह्मचर्य के ही महत्त्व एवं प्राथम्य के कारण हनुमानजी–जैसे बलिष्ठ व्यक्ति के सम्मुख महान योद्धाओं को नतमस्तक होना पड़ा और स्वयं भगवान् श्रीराम ने उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। अपार समुद्र को ब्रह्मचर्य के ही कारण वे लांघ गये और लंका का दहन भी किया।

भीष्मपितामह के भी ऐश्वर्य का ब्रह्मचर्य के ही कारण हमलोग वर्णन करते है। भीष्मपितामह का इतना महत्त्व है कि हमलोग उनकी पूजा करते हैं। यह सब ब्रह्मचर्य का ही प्रभाव है। ब्रह्मचारी व्यक्ति का ब्रह्मचर्य सुरक्षित रहता हैं।

ब्रह्मचर्य की रक्षा से ही प्राणों की रक्षा है और ब्रह्मचर्यनाश से ही प्राणों का नाश है। अतः प्रयत्नपूर्वक ब्रह्मचर्य की रक्षा करनी चाहिये।

७. धर्म

जगद्गुरु शंकराचार्य ने धर्म की परिभाषा करते हुए कहा है कि जिससे मनुष्य की सर्वाङ्गीण समुन्नति हो उसी को धर्म कहते हैं। धर्म के ही कारण प्रत्येक वस्तु की सत्ता है। यदि सभी वस्तुएँ अपने-अपने धर्म को छोड़ दें तो उनकी सत्ता ही समाप्त हो जायगी। उदाहरणार्थ—जैसे अग्नि का धर्म जलाना और जल का धर्म शीतल रहना है। यदि अग्नि अपने जलाने वाले धर्म को छोड़कर ठण्ढी रहना प्रारम्भ कर दे तो कौन उसको अग्नि कहेगा? इसी प्रकार जल अपने शीतलतारूप धर्म का परित्याग करके यदि उष्ण रहना प्रारम्भ कर दे तो कौन उसको जल कहेगा? अतः 'स्वे स्वे' कर्मण्यभिरतः संसिद्धि लभते नरः।'

मनुष्य अपने-अपने कर्म तथा अपने-अपने धर्म में स्थित रहकर ही प्रतिष्ठित होता हैं। इसलिये प्रत्येक व्यक्ति को अपने-अपने धर्म में प्रतिष्ठित रहना चाहिये।

धर्म का नाश करना अपना नाश करना है। धर्म की रक्षा ही अपनी रक्षा है। अतः प्रयत्नपूर्वक धर्म की रक्षा करनी चाहिये।

धर्म की रक्षा के लिए दश वस्तुओं की रक्षा करनी पड़ती है, क्योंकि धर्म निम्नलिखित दस वस्तुओं का समष्टिरूप है—

धृतिः क्षमा दयाऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥

८. परोपकार

(परोपकाराय सतां विभूतयः)

परोपकार शब्द में दो शब्द मिले हैं। एक है पर, दूसरा उपकार। पर का अर्थ है दूसरा, उपकार का अर्थ है भलाई। इस प्रकार परोपकार का अर्थ हुआ दूसरे की भलाई, अर्थात् अपने स्वार्थ को छोड़कर जो दूसरे की भलाई की जाती है वही परोपकार है। ऐसे तो लोग अपनी भलाई की चिन्ता के साथ दूसरों की भी भलाई की चिन्ता करते हैं किन्तु वह उत्तम कोटि का परोपकार नहीं समझा जाता है। इसलिये भर्तृहरि ने उत्तम कोटि का परोपकारी उसी को माना है जो हित का त्याग करके दूसरे के हित-साधन में सन्नद्ध होता है।

परोपकार के समान दूसरा धर्म नहीं है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा भी है—

परहित सरिस धरमु नहि भाई।
पर पीड़ा सम नहिं अधमाई ॥

गोस्वामी तुलसीदासजी ने परोपकार-परायण को ही उत्तम कोटि का सन्त माना है।

९. महामना पं० मदनमोहन मालवीय

सर्वगुण-सम्पन्न विभूतियाँ संसार में बहुत कम उत्पन्न होती हैं। भगवान् ने कहा है कि जो-जो उच्चतम सत्त्व हैं वे सब मेरे ही अंश

से समुत्पन्न हैं। पूज्य मालवीयजी भी भगवान् के उन्हीं महत्तर अंशों में से थे। राष्ट्रपिता महात्मा गांधीजी उनको अपना गुरु मानते थे।

देश के हित के लिए, धर्म की रक्षा के लिए, नागरिकों एवं नवयुवकों में नवीन चेतना उत्पन्न करने के लिए उनका चित्त सतत चिन्तित रहता था। प्राणियों के दुःख को दूर करने की उनकी उत्कट अभिलाषा रहती थी। उनका कथन था--

नत्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं वाऽपुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां, प्राणिनामार्तिनाशनम्॥ (भागवत)

मैं स्वर्ग की कामना नहीं करता, राज्य नहीं चाहता, केवल दुःख से पीड़ित व्यक्तियों का दुःख दूर करना चाहता हूँ।

आज पूज्य मालवीयजी भी इस संसार में नहीं हैं किन्तु उनके द्वारा संस्थापित, एशिया का सब से बड़ा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय मूक रूप से उनकी आत्मा के दिव्य उपदेशालोक से संसार को आलोकित कर रहा है।



१०. सदाचार

सदाचार शब्द में दो शब्द हैं। सत् और आचार। सत् का अर्थ है सुन्दर अथवा दार्शनिक दृष्टि से नित्य शुद्ध बुद्ध स्वभाव ब्रह्म। आचार का अर्थ है आचरण करना अर्थात् शुद्ध या पवित्र आचरण अथवा ब्रह्म में रत रहकर आचरण करना, अपने समान ही सबको समझना। इसीलिये कहा भी है--

"आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्"

जो वस्तु या जो आचरण अपने को अनुचित मालूम होता हो, वैसा दूसरों के प्रति नहीं करना चाहिये।

सदाचार-सम्पन्न व्यक्ति की सर्वत्र पूजा होती है। जो सदाचारी नहीं है उसकी सभी क्रियाएँ हाथी के स्नान के समान हैं। जैसे हाथी

स्नान करने के बाद पुनः अपने शरीर पर धूलि धारण कर लेता हैं उसी प्रकार सदाचारहीन मनुष्य भी अपनी सम्पूर्ण कियाओं का विकास नहीं कर पाता। सदाचार करने से बुद्धि निर्मल हो जाती है और जैसे निर्मल शीशा में अपना प्रतिबिम्ब स्पष्ट दिखाई देता है उसी प्रकार निर्मल बुद्धि में भी शास्त्र का ज्ञान स्पष्ट रूप से दिखाई देता है, अतः सदाचार की महिमा भी सर्वोत्कृष्ट है।

११. अवतार

अवतार शब्द का अर्थ है उतरना। परब्रह्म परमात्मा मनुष्य के रूप में भूमि पर अवतीर्ण होकर जब मनुष्यों को चरित्रगठन एवं समुन्नतिशील बनने की शिक्षा प्रदान करता है तब इसी को अवतार कहते हैं। धर्म की स्थापना, अधर्म का विनाश तथा भक्तजन एवं सज्जनों की रक्षा ही अवतार का प्रयोजन है। भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है—

यदा यदा हि धर्मस्य, ग्लानिर्भवति भारत
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥

इसी का अनुवाद गोस्वामी तुलसीदासजी ने किया है—

जब-जब होइ धरम कै हानी।
बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी ॥
तब-तब धरि प्रभु मनुज सरीरा।
हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा ॥

इस प्रकार के समय-समय पर होने वाले भगवान् के २४ अवतार हैं। इनमें से प्रमुख रूप से १० अवतार हैं—१—वाराह, २—नृसिंह, ३—वामन,

४–मत्स्य, ५–परशुराम, ६–राम, ७–कृष्ण, ८–कूर्म, ९–बुद्ध, तथा १०–कल्कि ।

१२. राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी

महात्मा गान्धीजी का प्रादुर्भाव गुजरात प्रान्त में हुआ । ये राष्ट्रपिता की उपाधि से विभूषित हैं । इनका इतना महत्त्व था कि सभी देशवासी इनको पिता के समान पूज्य समझते थे और इनका आदर करते थे, किन्तु संसार में महत्तम विभूतियों का अवसान बड़े ही विचित्र रूप से होता है, महात्मा गान्धीजी का अवसान भी विचित्र रूप में हुआ ।

सन् १९४८ में उनको देश के एक व्यक्ति ने गोली मारी और महात्माजी उस हत्यारे को भी शुभाशिष देते हुए इस असार संसार को छोड़कर चले गये ।

महात्माजी चले गये किन्तु उनके दिव्य उपदेश अब भी हमलोगों के लिए कर्णधार बने हुए हैं । यद्यपि महात्माजी की वाणी हमलोगों के समक्ष मुखरित नहीं हो रही है किन्तु उनकी अव्यक्त एवं अश्रवण गोचर वाणी सर्वदा हमलोगों के पथ को आलोकित करती रहेगी ।

भारतमाता की दासता की शृङ्खला को तोड़ने का श्रेय महात्माजी को ही है, अतः भारतमाता अपने वरद पुत्र को कभी नहीं भूल सकती ।

१३. युगपुरुष पं० जवाहरलाल नेहरू

पंडित जवाहरलाल नेहरू केवल भारत के ही नहीं, अपितु विश्व के मान्य थे । इनके कर्तव्यों, इनकी वत्सलता तथा इनके स्वभाव का स्मरण होते ही विकलता से लेखनी की गति अवरुद्ध हो जाती है । महान् पुरुष के विषय में लिखने की शक्ति सामान्य लेखनी में नहीं हो सकती । इनका गुणगान यदि कोई आजीवन भी करे तो पूर्ण नहीं हो सकता ।

भारत की समुन्नति, देश की स्वतंत्रता और जन-जन में जागरण करने के लिए जो भी प्रयत्न पंडितजी ने किया उनका सर्वाङ्ग वर्णन करना सामान्य बुद्धिगम्य नहीं है। इनकी त्यागभावना इतनी उत्कृष्ट कोटि की थी कि इन्होंने देश के हित के लिए अपना सर्वस्व बलिदान कर दिया और अपनी भावी सन्तति के हित के लिए कुछ भी अर्जित नहीं किया। गत २७ मई, १९६४ को पंडितजी इस धराधाम को छोड़कर गोलोकवासी हो गये। उनके निधन का समाचार सुन सारा संसार ऐसे तड़प उठा जैसे जल के बिना मछली तड़प उठती है।

पंडितजी हर धर्मावलम्बी तथा हर धर्म का आदर करते थे इसलिये उनको हर धर्मावलम्बी एवं हर देश के व्यक्ति आदरणीय मानते हैं और उनके शरीर-त्याग के समय विश्व के सभी देशवासी को उतना ही दुःख हुआ जितना कि भारतवासियों को।

१४. व्यापार

"व्यापारे वसते लक्ष्मीः" व्यापार में लक्ष्मीजी (धन) का निवास होता है। लक्ष्मी का उपयोग अन्य किसी भी विषय में न होने पर उतना लाभकर नहीं होता है जितना व्यापार में।

व्यापार करने वाला व्यक्ति अन्य प्रकार के कार्य करने वाले व्यक्ति की अपेक्षा अधिक धन कमाता है और सुखी भी रहता है। हमारे यहाँ इन प्राचीन कहावतों में व्यापार का स्थान द्वितीय श्रेणी में आता है—

"उत्तम खेती, मध्यम बान।
अधम चाकरी, भीख निदान ॥

उत्तम कार्य खेती है और मध्यम श्रेणी का कार्य व्यापार है किन्तु आज यह नितान्त प्रतिकूल प्रतीत होता है। आज उत्तम श्रेणी में व्यापार ही आ गया है।

लोग ऊँची-ऊँची नौकरी करके भी उतना धन नहीं कमा सकते हैं जितना कि व्यापार के माध्यम से। व्यापार करने वाले को देशाटन का भी ज्ञान होना चाहिये क्योंकि यदि वह देश-देशान्तर का ज्ञानी नहीं होगा तो वस्तु के विनिमय का भी उसको पूर्ण ज्ञान नहीं होगा, अतः व्यापारी को देशाटन का पूर्ण ज्ञान आवश्यक है। धनार्थी व्यक्ति को व्यापारी होना आवश्यक है।

१५. भारत

भारतवर्ष कर्मभूमि है। यहाँ पर कर्म करने के अनन्तर देवलोक में उसका भोग किया जाता है, अतः देवता भी भारत में जन्म प्राप्त करने के लिए उत्सुक रहते हैं। दूसरे लोकों में केवल भोग ही किया जाता है कर्म नहीं, अतः यह भारत पुण्यभूमि के नाम से भी प्रसिद्ध है।

कविवर मैथिलीशरण गुप्तजी ने इस प्रसंग में कहा है—

यह पुण्य भूमि प्रसिद्ध है, यहाँ के निवासी आर्य हैं।
विद्या, कला, कौशल्य सबके जो प्रथम आचार्य हैं॥
सन्तान यद्यपि आज उनकी हम अधोगति में पड़े।
पर चिह्न उनकी उच्चता के आज भी कुछ हैं खड़े॥

महाराज मनु ने भी भारतभूमि की प्रशंसा की है—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

इसी देश में उत्पन्न ब्राह्मण से सभी लोग अपने-अपने चरित्र की शिक्षा प्राप्त करते थे। भारतभूमि में जन्म लेने का भी बड़ा महत्त्व है। श्रीमद्-भागवत में कहा गया है—'यैर्जन्म लब्धं नृपभारताजिरे' जिन्होंने भारत-वासियों के मध्य जन्म लिया उनका जीवन भी सफल है।

भगवान् के सभी अवतार यहाँ हुए हैं। दूसरे देशों में केवल भगवान् ने अपने दूत भेजे हैं किन्तु भारतवर्ष में भगवान् स्वयं मनुष्य रूप में राम और कृष्ण आदि २४ रूपों में अवतीर्ण हुए हैं। अतः भारतभूमि प्रशंसार्ह है।

१६. भारतीय पर्व

भारतवर्ष में अनेक पर्व मनाये जाते हैं। यहाँ के पर्वों की विशेषता यह है कि वर्ण-व्यवस्था के अनुसार उनके मनाने का विधान है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन चारों वर्णों के अनुसार पर्व भी चार भागों में विभक्त हैं—

(१) श्रावणी पर्व श्रावण मास के शुक्लपक्ष की पूर्णिमा को होता है। यह ब्राह्मणों का पर्व है। इस दिन सभी ब्राह्मण गंगाजी या समीपवर्ती नदीतट या तड़ाग में वैदिक विधि से श्रावणी स्नान करते हैं।

(२) आश्विन शुक्ल दशमी को विजयादशमी पड़ती है, जिसको लोग दशहरा कहते हैं। इस दिन अस्त्र-शस्त्रों की पूजा की जाती है। यह पर्व क्षत्रियों का है।

(३) कार्तिक कृष्ण अमावस्या को दीपावली होती है। इस दिन लक्ष्मीजी की पूजा होती है। यह पर्व वैश्यों का पर्व है।

(४) फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा को होलिका-दहन होता है। यह पर्व शूद्रों का माना जाता है।

यद्यपि पूर्वोक्त चारों पर्वों को सभी वर्णों के लोग मनाते हैं, किन्तु उनका नामकरण विशेष रूप से किया गया है। सामान्य रूप से मनाये जाने वाले पर्व निम्नलिखित हैं—

चैत्र शुक्ल रामनवमी—इस दिन भगवान् श्रीरामजी का जन्म हुआ था। गंगादशहरा ज्येष्ठ में पड़ता है। आषाढ़ी पूर्णिमा गुरुपूर्णिमा के नाम से

प्रसिद्ध है और लोग उस दिन गुरुपूजा करते हैं। भाद्रपद कृष्णाष्टमी के दिन भगवान् श्रीकृष्ण का जन्म हुआ था। क्वार की पूर्णिमा को शरत्पूर्णिमा कहते हैं। इसी प्रकार कार्तिकी पूर्णिमा, मकर संक्रान्ति, शिवरात्रि आदि अन्य पर्व भी हैं।

१७. राष्ट्रभाषा

प्रत्येक देश की एक निश्चित्त राष्ट्रभाषा होती है। जिस भाषा को राष्ट्र के अधिकांश व्यक्ति जानते हैं, जो उनके दैनिक जीवन का निर्वाह करने वाली है, जिससे उनके दैनिक व्यवहार चलते हैं और जो जनसामान्य की भाषा होती है वही राष्ट्रभाषा कहलाती है।

आज से कई हजार वर्ष पूर्व भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा संस्कृत थी। वेद, शास्त्र, पुराण, इतिहास, दर्शनशास्त्र तथा उत्तम कोटि के काव्यों की रचना संस्कृत भाषा में ही उपलब्ध होती है। संस्कृत राष्ट्रभाषा का साहित्य अत्यन्त समृद्धिशाली है। यदि संस्कृत राष्ट्रभाषा नहीं रही होती तो उसका साहित्य इतना समृद्धिशाली न होता।

वर्तमान समय में देश की राष्ट्रभाषा हिन्दी घोषित की गई है। साहित्य एवं दर्शन के ग्रन्थों का पुष्कल मात्रा में सृजन इसी भाषा में किया जा रहा है। यद्यपि अभी भी हिन्दी साहित्य इतना धनी एवं शक्तिसम्पन्न नहीं है जितना कि संस्कृत का, किन्तु कुछ समय के बाद यदि शासनाधिकारियों ने पूर्ण सहयोग दिया तो हिन्दी भी संस्कृत के बराबर बैठने का गौरव प्राप्त कर सकेगी।

जिसकी अपनी कोई राष्ट्रभाषा नहीं होती, जो देश अपनी राष्ट्रभाषा पर गर्व नहीं करता, जो अपनी राष्ट्रभाषा में विद्यमान साहित्य की अभिवृद्धि व समुन्नति के लिए प्रयत्नशील नहीं होता, वह साभिमान अपने को स्वतंत्र कहने का अधिकारी नहीं है। देश की सर्वाङ्गीण

समुन्नति तब तक सम्भावित नहीं जब तक उसकी राष्ट्रभाषा की सर्वाङ्गीण समुन्नति न हो। देश की स्थिति में राष्ट्रभाषा का वही स्थान है जो कि प्राणों का शरीर में। प्राणों से रहित जिस प्रकार शरीर की कोई महत्ता व उपयोगिता नहीं, उसी प्रकार राष्ट्रभाषा के बिना देश की कोई महत्ता व सत्ता नहीं है।

अत: देश को शक्तिसम्पन्न एवं सुदृढ़ बनाने के लिए राष्ट्रभाषा का विकास, प्रचार एवं प्रसार परमावश्यक है।

१८. पुस्तकालय

भारतीय परम्परा में पुस्तकालय का बड़ा महत्त्व है। पुस्तकालय ज्ञान की वह संचित निधि है, जो जिज्ञासु मनुष्यों की जिज्ञासा शान्त करने, ज्ञानी मनुष्यों के ज्ञान को बढ़ाने तथा विद्वानों की विद्वत्ता को उत्तरोत्तर बढ़ाने में सर्वदा सहायता करती है।

जीवन में पुस्तकालय की बड़ी उपयोगिता है। जिस गाँव में, जिस विद्यालय में एवं जिस नगर में पुस्तकालय नहीं है, उस गाँव, उस विद्यालय तथा उस नगर को अङ्गहीन समझना चाहिये। जैसे कोई सर्वाङ्ग सुन्दर मनुष्य है किन्तु उसके आँखें न हों या नाक न हो तो जैसी उस मनुष्य की कुशोभा होती है उसी प्रकार उस गाँव या विद्यालय तथा नगर की कुशोभा होती है। जिस प्रकार पुस्तकालय स्वयं पुस्तक का घर होता है उसी प्रकार वह अपने सेवन करने वाले मनुष्य को ज्ञान का आलय बना देता है और उसके अन्त:करण में ज्ञान का शुभ्र आलोक फैला देता है।

पुस्तकालय में पुस्तकों के रूप में असंख्य विद्वानों की बुद्धि, उनके जीवन के अनुभव तथा उनके विचारों का संग्रह रहता है और हमलोग पुस्तक के रूप में उनकी बुद्धि तथा विचारों से अपनी बुद्धि तथा विचारों

का सम्बन्ध स्थापित करते हैं, अतः पुस्तकालय का सेवन करने वाले व्यक्ति अप्रतिम विद्वान् हो जाते हैं, क्योंकि वे न जाने कितने विचारकों के सिद्धान्तों और विचारों के साथ सम्पर्क स्थापित किये रहते हैं।

अतः प्रत्येक मनुष्य के जीवन में ज्ञान की ज्योति जगाने के लिए ग्राम-ग्राम एवं नगर-नगर में पुस्तकालयों की स्थापना होनी चाहिये।

१९. व्यायाम

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्थापक महामना पंडित मदनमोहन मालवीयजी लोगों को सर्वदा उपदेश करते थे कि—

सत्येन ब्रह्मचर्येण, व्यायामेनाथ विद्यया।
देशभक्त्यात्मत्यागेन सम्मानार्हः सदा भव॥

सत्य, ब्रह्मचर्य, व्यायाम, विद्या एवं देशभक्ति तथा आत्मत्याग के बल पर हमेशा सम्मान पाने योग्य बनो।

उनकी पवित्र वाणी से यह सिद्ध होता है कि सत्य, ब्रह्मचर्य, विद्या एवं देशभक्ति तथा आत्मत्याग के समान व्यायाम भी सम्मान को देने वाला तथा बढ़ाने वाला है। व्यायाम से केवल शरीर पुष्ट ही नहीं होता, अपितु शरीर की पुष्टि के साथ ही बुद्धि भी पुष्ट होती है। बुद्धि की पुष्टि से विद्या पुष्ट होती है तथा जिसकी बुद्धि और विद्या पुष्ट हो जाती है, उसको कर्तव्य-अकर्तव्य का विवेक, धर्म, अधर्म का विवेक एवं सत्य और असत्य का विवेक स्वतः हो जाता है। इस प्रकार व्यायाम के द्वारा शरीर की पुष्टि, शरीर की पुष्टि से बुद्धि की पुष्टि तथा बुद्धि की पुष्टि से विद्या की पुष्टि और विद्या की पुष्टि से सत्य का पालन, ब्रह्मचर्य का पालन, देशभक्ति का पालन तथा आत्मोत्सर्ग की भावना का पालन होता है। इसलिये सत्य, ब्रह्मचर्य, विद्या, देशभक्ति तथा आत्मत्याग, इन सब में व्यायाम का प्रमुख स्थान है क्योंकि व्यायाम सब

में प्रधान है और उससे समस्त विद्या, ब्रह्मचर्य आदि उत्पन्न होते हैं। व्यायाम के प्रचारार्थ प्रत्येक विद्यालय में शारीरिक अभ्यास (फिजिकल ट्रेनिंग) का प्रबंध किया गया है क्योंकि विद्या व बुद्धि के साथ उसका अभिन्न सम्बन्ध है। महात्मा गांधीजी ने भी कहा था कि पाठ्यक्रम में शारीरिक अभ्यास का भी वही स्थान है जो बौद्धिक अभ्यास का है, अतः व्यायाम मनुष्य जीवन के लिए परमोपयोगी है।

२०. समाचार-पत्र

समाचार-पत्र वे दिव्यचक्षु हैं जिनसे मनुष्य घर बैठे ही सारे संसार की बाहरी व भीतरी स्थिति थोड़े ही समय में देख लेता है। समाचार-पत्र नित्य-प्रति नया-नया ज्ञान प्राणियों में वितरण करते हैं। समाचार-पत्र ज्ञानरूपी सूर्य की वे किरणें हैं जो प्रतिदिन नया-नया प्रकाश संसार में फैलाती हैं।

आजकल समाचार-पत्र का अध्ययन न करने वाले मनुष्यों का ज्ञान एक अङ्ग से विहीन होता है अतः अपने ज्ञान को सर्वाङ्गीण बनाने के लिए समाचारप-त्रों का अध्ययन अवश्य करना चाहिये। समाचार-पत्र के अध्ययन से भाषा का पूर्ण ज्ञान तथा शीघ्र पढ़ने का अभ्यास भी हो जाता है और साथ ही, संसार की नवीन बातें भी मालूम हो जाती हैं। समाचार-पत्र के अध्ययन के बिना बड़े-बड़े विद्वानों के ज्ञान में भी महती त्रुटि रह जाती है।

समाचार-पत्र का ज्ञान परमोपयोगी है। कुछ लोग इसको नगण्य समझ कर छोड़ देते हैं, ऐसा नहीं करना चाहिये। विद्यार्थियों को अपने ज्ञान की वृद्धि के लिए समाचार-पत्रों का अध्ययन अवश्य करना चाहिये।

जो मनुष्य कम पढ़े हैं किन्तु अधिक मनोयोग से समाचार-पत्र पढ़ते हैं उनका सांसारिक ज्ञान ही नहीं, अपितु अन्य विषयों का ज्ञान भी पुष्ट हो जाता है। इसका कारण यह है कि समाचार-पत्रों में उच्चकोटि के विद्वानों के लेख, उनके भाषण तथा सम्पादकीय टिप्पणियाँ निकलती हैं। इससे मनुष्यों को उनके विचारों का अध्ययन करने का सुअवसर मिलता है तथा उनकी ज्ञानवृद्धि होती है।

समाचार-पत्रों की भाषा सरल होती है और सरल भाषा में कठिन विषयों का प्रतिपादन किया जाता है, इसलिये सब लोग उसको ठीक तरह से समझ लेते हैं और लाभान्वित होते हैं, अतः आधुनिक काल में सर्वाङ्गीण ज्ञान प्राप्त करने के लिए समाचारपत्र समुचित साधन हैं।

२१. विद्यालय

विद्यालय शब्द के अर्थ का विचार करने पर यह प्रतीत होता है कि इस शब्द में दो शब्द मिले हुए हैं। एक विद्या दूसरा आलय। इन दोनों शब्दों के मिलने पर विद्यालय शब्द बना है। विद्या का अर्थ है—ज्ञान अर्थात् यथार्थ ज्ञान, जिसके द्वारा अज्ञान का नाश किया जाता है। इस प्रकार अज्ञान का नाश करने वाले एवं यथार्थ ज्ञान कराने वाले साधन को विद्या कहते हैं। ये साधन भी कई प्रकार के हैं, किन्तु हमारे पूर्वाचार्यों ने इन अज्ञान के नाश करने वाले तथा यथार्थ ज्ञान के उत्पादक साधनों को चतुर्दश भागों में विभक्त किया है—

पुराण-न्याय-मीमांसा-धर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः।
विद्यास्थानानि वेदाश्च धर्मस्य च चतुर्दश॥

अर्थात् अष्टादश पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र, शिक्षा, कल्प, ज्योतिष, छन्द, निरुक्त और व्याकरण एवं चारों वेद, ये चौदह भेद वि

के होते हैं और आलय का अर्थ भवन होता है। इस प्रकार चौदह विद्याओं के भवन को विद्यालय कहते हैं।

विद्यालय शब्द का अर्थ निश्चित होने पर उसकी उपयोगिता पर विचार करें। एक बार किसी महात्मा से किसी ने पूछा कि महाराज, विद्वान् और पारस मणि में कौन बड़ा है ?

महात्माजी ने कहा—पारस मणि जब लोहा का स्पर्श करता है तो उसको सोना बना देता है पर लोहे को पारस मणि नहीं बना सकता। किन्तु विद्वान् तो अपने संसर्ग से मूर्ख व्यक्ति को भी अपने ही जैसा बना देता है अतः विद्वान बड़ा है। इसलिये विद्वान् बनकर यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने तथा अज्ञानान्धकार को नष्ट कर स्वच्छ ज्ञान का आलोक प्राप्त करने के लिए विद्यालय का सेवन परमोपयोगी है।

२२. विज्ञान

विज्ञान शब्द के प्रधान रूप से दो अर्थ हैं—अध्यात्मज्ञान और भौतिक ज्ञान। आजकल भौतिक ज्ञान वाला अर्थ ही प्रचलित है, जिसके चकाचौंध से सारा संसार व्यामोह में पड़ गया है।

भौतिक विज्ञान की उन्नति के कारण संसार को बहुत से लाभ हुए हैं, जैसे, यातायात की सुविधा। पहले हमलोग जहाँ एक स्थान से दूसरे स्थान पर कठिनाई से बहुत दिनों में पहुँच पाते थे, वहाँ अब सरलता से शीघ्र ही पहुँच जाते हैं। इसी प्रकार रेल, तार, डाक, आकाशवाणी आदि सभी प्रकार की सुविधाएँ समुपलब्ध हैं। जिन विमानों का वर्णन हम केवल धर्मग्रन्थों में ही पढ़ते थे उनको आज प्रत्यक्ष आकाश में आते-जाते देखते हैं।

यह प्रायः देखा जाता है कि जिस वस्तु से अधिक लाभ होता है उससे अधिक हानि भी होती है। जब मानव की पाशविकता अत्यधिक वृद्धिगत

होने लगती है और वह अपनी प्रवृत्तियों के वशीभूत होकर दानव बन जाता है, उस समय वह लाभकर वस्तुओं का भी हानिकर के रूप में उपयोग करता है। आज विज्ञान का ऐसे ही दुरुपयोग हो रहा है। मानव भयंकर विध्वंसकारी अस्त्र-शस्त्र बनाकर विश्व को भय से प्रकम्पित कर रहा है। सारा विश्व आज इस बात से आतंकित और त्रस्त है कि न जाने किस क्षण संसार भस्मीभूत हो जायगा।

यदि कोई मेधावी इसका विनियोग उचित ढंग से करे तो हानि की अपेक्षा लाभ अधिक हो सकता है।

●

२३. वेद, वेदाङ्ग, पुराण और दर्शन

वेद—

वेद हमारी संस्कृति के महान् निधिभूत पवित्र ज्ञानराशि के भंडार हैं। वेद को हमलोग किसी मनुष्य का बनाया हुआ नहीं मानते। कुछ लोग वेद को ईश्वर-निर्मित मानते हैं तथा कहते हैं—

यस्य निःश्वसितं वेदाः यो वेदेभ्योऽखिलं जगत् निर्ममे।

अर्थात् जिसके निःश्वास रूप वेद हैं और जिसने वेदों से सम्पूर्ण सृष्टि की रचना की है। इस प्रकार ब्रह्म या ईश्वर के निःश्वास रूप वेद सिद्ध होते हैं। अस्तु, यह सनातनसिद्धान्त है कि हमारे पवित्र ज्ञानराशि के भण्डार वेद अपौरुषेय हैं।

वेदाङ्ग—

वेद के छः अङ्गों को बिना जाने वेदार्थ का ज्ञान नहीं हो सकता। वेद के छः अङ्ग निम्नाङ्कित हैं—

व्याकरण, छन्द, ज्यौतिष, शिक्षा, कल्प और निरुक्त। जो इन छः अङ्गों को नहीं पढ़ता वह वेदार्थ को नहीं जान सकता, अतः महर्षि पाणिनि ने पाणिनीय शिक्षा में लिखा है—

छंदः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते ।
ज्योतिषामयनं चक्षुः निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते ।।
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम् ।
तस्मात् साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते ।।

छंद:शास्त्र वेद का पैर है, कल्प हाथ है, ज्यौतिष आँख हैं, निरुक्त कान है, शिक्षा नाक है और व्याकरण मुख है । इसलिए साङ्गवेदाध्ययन करनेवाला व्यक्ति ही ब्रह्मलोक में पूजित होता है ।

पुराण—

वेदों में आनेवाली आख्यायिकाओं एवं गूढ़ रहस्यों के पूर्ण ज्ञान के लिए पुराणों का पढ़ना जरूरी है । महापुराण अठारह हैं—

मद्वयं भद्वयं चैव ब्रत्रयं वचतुष्टयम् ।
अनापलिङ्गकूस्कानि पुराणानि प्रचक्षते ।।

(१) मत्स्यपुराण, (२) मार्कण्डेय पुराण, (३) भागवत पुराण, (४) भविष्य पुराण, (५) ब्रह्म पुराण, (६) ब्रह्मवैवर्त पुराण, (७) ब्रह्माण्ड पुराण, (८) वायु पुराण, (९) वाराह पुराण, (१०) वामन पुराण, (११) विष्णु पुराण, (१२) अग्नि पुराण, (१३) नारद पुराण, (१४) पद्म पुराण, (१५) लिङ्ग पुराण, (१६) गरुड़ पुराण, (१७) कूर्म पुराण और (१८) स्कंद पुराण ।

दर्शन—

सब शास्त्रों के तत्त्वों को जानने के लिए दर्शनशास्त्र का अध्ययन आवश्यक है । इसलिये दर्शनशास्त्र के विषय में कहा गया है—'प्रदीपः सर्वशास्त्राणाम्' । अर्थात् दर्शनशास्त्र सभी शास्त्रों का दीपक है ।

दर्शन के दो भेद होते हैं—आस्तिक और नास्तिक ।

आस्तिक शब्द का अर्थ है वेद को माननेवाला तथा नास्तिक का अर्थ है वेद को न माननेवाला ।

आस्तिक के छः भेद होते हैं—न्याय, वेदान्त, सांख्य, योग, मीमांसा, और वैशेषिक तथा नास्तिक के तीन भेद होते हैं—जैन, बौद्ध और चार्वाक ।

२४. देशाटन

देशाटन में दो शब्द हैं—देश और अटन। अटन का अर्थ है घूमना। अतः देशाटन का अर्थ हुआ देशों में घूमना।

देशाटन से वह ज्ञान मिलता है जो अध्ययन करने से नहीं मिल सकता। देशाटन करने से मनुष्य एक दूसरे से सम्पर्क स्थापित करता है तथा वहाँ की सभ्यता एवं संस्कृति से अपना परिचय स्थापित करता है।

जो मनुष्य देशाटन नहीं करते, उनका ज्ञान अधूरा रहता है। स्वर्गीय महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने देशाटन के विषय में अत्यधिक साहित्य का सृजन किया है। उन्होंने 'अथाऽतो ब्रह्मजिज्ञासा' इस वेदान्त सूत्र के समान "अथातो घुमक्कड जिज्ञासा" इत्यादि रूप से सूत्रों का प्रणयन किया है।

आद्यशंकराचार्य ने भी देश में चार पीठों की स्थापना करके देशाटन के महत्त्व पर पूर्ण प्रकाश डाला है। यदि भगवान् शंकराचार्य देश में चारों ओर घूमते नहीं तो किस प्रकार वे देश में चार पीठों की स्थापना करते, अतः यह सिद्ध होता है कि शंकराचार्यजी-जैसे महापुरुष भी देशाटन का महत्त्व हृदय से अङ्गीकार करते थे।

देशाटन द्वारा एक दूसरे पर धार्मिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक प्रभाव भी पड़ता है।

●

२५. कृषि-विज्ञान

अन्य विज्ञानों की भाँति कृषिविज्ञान भी एक महत्त्वपूर्ण विज्ञान तथा अध्ययन का विषय है।

कृषि-विज्ञान में कृषि से सम्बन्धित नियमों का विवरण रहता है। कृषि (खेती) करने का क्या विधान है, उत्तम फसल किस प्रकार तैयार की जा सकती है, जमीन को उपजाऊ बनाने के क्या उपाय हैं, इत्यादि बातों

का विश्लेषण कृषि-विज्ञान का विषय है। अन्य देशों की अपेक्षा भारतवर्ष में इसका प्रचलन कम है, इसलिये भारतवर्ष में फसल की उपज उतनी प्रचुर मात्रा में नहीं होती जितनी कि अन्य देशों में।

अन्य देशों में कृषि-विज्ञान के विधानों को क्रियारूप में परिणत किया जाता है और यहाँ केवल वे विधान-ग्रन्थ तक ही सीमित रहते हैं। फसल बोने का विधान, अच्छे बीज की पहिचान, उत्तम खाद बनाने के विधान, उत्तम रूप से बीज बोना, जमीन को खेती के योग्य--बीज बोने के योग्य— बनाना आदि सभी बातों का ज्ञान इस विज्ञान से होता है।

जो व्यक्ति कृषि-विज्ञान को बिना पढ़े ही कृषि का कार्य करता है, वह उस अन्धे के समान है जो बिना लाठी के ऊबड़-खाबड़ मार्ग में जाने का असफल प्रयत्न करता है। आजकल देश में विद्यमान खाद्य समस्या का समाधान कृषि-विज्ञान के माध्यम से ही किया जा सकता है, अतः कृषि-विज्ञान का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है।

२६. स्त्री-शिक्षा

प्राचीन काल में स्त्री-शिक्षा का बहुप्रचलन था। वेदों तथा उपनिषदों में इस प्रकार के उदाहरण उपलब्ध होते हैं जिनसे स्त्री-शिक्षा की प्राचीनता सिद्ध होती है।

गार्गी और मैत्रेयी के उदाहरण से यह स्पष्ट होता है कि हमारे यहाँ वैदुष्य में स्त्रियों का स्थान पुरुषों की अपेक्षा किसी प्रकार कम नहीं था।

वर्तमान समय में कुछ व्यक्ति स्त्री-शिक्षा को निन्दनीय समझते हैं किन्तु वास्तव में स्त्री-शिक्षा से बहुत लाभ है।

जिस परिवार में स्त्री शिक्षित होती है उसमें बच्चों में प्रारम्भ से ही शिक्षा का प्रसार होने लगता है, क्योंकि शिशु का सम्बन्ध पिता की अपेक्षा माता से अधिक रहता है। पिता की अपेक्षा माता शिशु को अल्प

समय में साक्षर बना सकती है, अतः बच्चों की शिक्षा के प्रबन्धार्थ स्त्री-शिक्षा का होना आवश्यक है।

स्त्री-शिक्षा के प्रचार से परिवार में कलह भी अधिक नहीं होगा, क्योंकि अशिक्षित स्त्रियाँ अधिक झगड़ालू होती हैं और परिवार के लिए एक बोझ बन जाती हैं तथा उनका जीवन भी दुःखमय बना रहता है। उच्च कुलोत्पन्न अशिक्षित नारियों के जीवन में यदि कोई अघटित घटना घट जाती है और दैवात् उनके पति का निधन हो जाता है तो उनका जीवन-यापन भारभूत हो जाता है। किन्तु शिक्षित नारियाँ यथा कथंचित अपना जीवन व्यतीत कर लेती हैं, अतः इन सब बातों पर विचार करते हुए स्त्री-शिक्षा का होना परमावश्यक है।

वर्तमान समय में कुछ विदुषी नारियाँ देश की उन्नति में कंधे-से-कंधा लगाकर पुरुषों के साथ कार्य कर रही हैं। उनका यह योगदान किसी भी प्रकार पुरुषों की अपेक्षा कम नहीं कहा जा सकता। कई स्थानों में स्त्रियाँ पूर्ण भार वहन कर रही हैं और कई स्थानों से शासन-भार को भी सम्भाले हैं। अतः स्त्री-शिक्षा की अत्यधिक उपयोगिता है। शिक्षित स्त्रियाँ अपने सद्व्यवहार से परिवार में सम्मान-भाजन बन जाती हैं।

२७. अनुशासन-महत्त्व

समाज का प्रत्येक व्यक्ति किसी-न-किसी नियम में बद्ध है और जब वह नियम का अतिक्रमण कर कोई कार्य करता है तो लोग उसको उच्छृंखल कहने लगते हैं।

अतः समाज के नियम के अनुसार आचरण करते हुए वृद्धों एवं पूज्यजनों के वचनानुसार कार्य करना, उनके वचन-प्रामाण्य का अनुसरण करना, स्वेच्छाचारिता से वृद्धों के वचन व सामाजिक नियमों का उल्लंघन

न करना ही अनुशासन का तात्पर्य है। अनुशासित व्यक्ति का व्यक्तित्व एकदेशीय न होकर सार्वभौम होता है। वे शीघ्र ही उन्नति के चरम शिखर पर आरूढ़ होकर अपना अनुव्रजन करने वाले अन्य व्यक्तियों को भी उसी पद पर आरूढ़ कर लेते हैं। जिस समाज में अनुशासित व्यक्तियों का अभाव है, वह समाज अपने को जीवित समाज कहने का अधिकारी नहीं है।

संसार में जहाँ-जहाँ अनुशासनहीन समाज की संख्या में वृद्धि हुई है वहाँ-वहाँ क्रान्तियाँ हुई हैं, रक्तपात हुए हैं और मानव ने मानव के ऊपर दानव के समान शासन किया है। अनुशासनहीन समाज का मानव, मानव-रक्तपिपासु होकर दुर्दान्त रूप से उसका शोषण करता है।

अतः देश की सर्वाङ्गीण समुन्नति के लिए अनुशासित होना परमावश्यक है। यदि प्रत्येक व्यक्ति अनुशासित होगा तो प्रत्येक समाज भी अनुशासित होगा क्योंकि व्यक्ति से ही समाज बनता है और प्रत्येक समाज अनुशासित होगा तो सम्पूर्ण देश अनुशासित होगा क्योंकि समाजों से राष्ट्र बनता है, अतः प्रत्येक व्यक्ति के अनुशासित होने का तात्पर्य है सम्पूर्ण राष्ट्र या विश्व का अनुशासित होना। जहाँ सम्पूर्ण राष्ट्र अनुशासित है वहाँ आज भी वस्तुतः स्वराज्य है।

२८. जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी

जन्मभूमि तथा जननी का शास्त्रों में बड़ा महत्त्व है। मनुष्य, देवता, सभी को अपनी जन्मभूमि तथा माता स्वर्ग से भी अधिक प्रिय होती है। मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ने भी अपनी जन्मभूमि की बड़ी प्रशंसा की है। भगवान् ने कहा है कि—

सुनु कपीस अङ्गद लंकेसा। पावनपुरी रुचिर यह देसा॥
यद्यपि सब बैकुण्ठ बखाना। बेद पुरान बिदित जगु जाना॥
अवधपुरी सम प्रिय नहि सोऊ। यह प्रसंग जानहिं कोऊ-कोऊ॥
जन्मभूमि मम पुरी सुहावनि। उत्तर दिसि सरयू बह पावनि॥

इस प्रकार मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् राम ने जब अपनी जन्मभूमि की इतनी प्रशंसा की है तो सांसारिक मनुष्यों को अपनी जन्मभूमि क्यों नहीं प्रिय होगी।

व्यासजी ने तो श्रीमद्भागवत में लिखा है कि—

"मथुरा यत्र भगवान् नित्यं सन्निहितो हरिः।"

अर्थात् इस मथुरापुरी में भगवान् अभी भी नित्य निवास करते हैं। व्रज का परित्याग करके मैं एक पद भी कहीं नहीं जाता हूँ, ऐसा वचन भगवान् श्रीकृष्ण ने भी कई स्थलों पर कहा है। अतः केवल मानव-कोटि के जीवधारियों में ही नहीं, अपितु अवतारी पुरुषों में भी जननी और जन्मभूमि का स्थान आदर का है। इसीलिये कहा है—

'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।'

●

२९. तीर्थ-महत्त्व

भारतवर्ष पुण्यभूमि है। अनेकानेक रूपों में भगवान् के अवतार यहाँ हुए हैं। जिन स्थानों में भगवान् का साक्षात् या परम्परया सम्बन्ध हुआ वे सभी स्थान तीर्थ माने जाते हैं।

भारत में तीर्थों की संख्या बहुत है किन्तु प्रधान रूप से सात तीर्थ माने जाते हैं। उन सात प्रधान तीर्थों को सप्तपुरी कहते हैं—

अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, काञ्ची, अवन्तिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदाः शुभाः॥

अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, काञ्ची, अवन्तिका (उज्जैन) और द्वारावती (हरिद्वार) ये सात प्रसिद्ध हैं। इनके सेवन से मनुष्य को मुक्ति प्राप्त होती है। जो जीवधारी इन सात पुरियों में से किसी में मरता है उसका फिर जन्म नहीं होता । इन सभी पुरियों में काशी का महत्त्व बहुत अधिक है ।

इसके अतिरिक्त चार धाम हैं—

बद्रीनाथ, रामेश्वर, जगन्नाथ और द्वारिका। इन चारों धामों में जाकर भगवान् के दर्शनमात्र से ही मुक्ति हो जाती है।

तीर्थ-सेवन करने में यदि किसी मनुष्य से किसी प्रकार का पाप बन गया तो उसका क्षय होना बड़ा ही कठिन है अतः धर्मग्रन्थों में लिखा है——

अन्यक्षेत्रे कृतं पापं, तीर्थक्षेत्रे विनश्यति।
तीर्थक्षेत्रे कृतं पापं वज्रलेपो भविष्यति ।।

अन्य क्षेत्रों में किये हुए पाप का नाश तीर्थक्षेत्र में हो जाता हैं किन्तु तीर्थक्षेत्र में किया हुआ पाप नष्ट नहीं होता। इसी प्रकार तीर्थक्षेत्र में किया हुआ पुण्य भी कभी नष्ट नहीं होता है। अतः तीर्थ में पुण्य कार्य ही करना चाहिये।

३०. छात्र-जीवन

जिस प्रकार छत्र (छाता) आतप, वर्षा आदि का वारण करता है, उसी प्रकार जो गुरु के दोषों का वारण करे उसको छात्र कहते हैं।

इस परिभाषा से यह सिद्ध होता है कि जो दोषों का निवारक हो वह छात्र है। अतः छात्र-जीवन में दोषों का संग्रह नहीं होना चाहिए। छात्रों को किसी की बुराइयों की ओर ध्यान न न देकर उसकी अच्छाइयों की ओर ध्यान देना चाहिये। जो दूसरे की बुराइयों को दूर करता हैं

उसमें स्वयं बुराइयाँ कैसे रह सकती हैं। अतः यदि छात्र गुरु के दोषों को दूर करते हैं तथा उनका आवरण करते हैं तो उनमें दोष कैसे रहेंगे। छात्र-जीवन की उपयोगिता गुणों का संचय करने में है। दोषापनयनार्थ ही तो छात्र विद्या का अध्ययन करते हैं।

छात्र-जीवन कठिन होते हुए भी आनन्दप्रद है। छात्र-जीवन को सामान्य व्यक्ति नहीं पा सकते। बड़े पुण्य से छात्र-जीवन मिलता है। छात्र-जीवन के विषय में किसी ने कहा है—

काकचेष्टा वकध्यानं श्वाननिद्रा तथैव च।
स्वल्पाहारो गृहत्यागच्छात्राणां पञ्चलक्षणम् ॥

कौए-जैसी चेष्टा, बगुले-जैसा ध्यान — जो हमेशा अपनी इच्छित वस्तु पर केन्द्रित रहे, कुत्ते-जैसी नींद—जो थोड़ी-सी आवाज से जग जाय, अल्प आहार करने वाला और घर पर अधिक दिन न ठहरने वाला—ये ही पाँच छात्र के लक्षण हैं।

छात्र-जीवन को नष्ट करने वाले कुछ ऐसे दोष हैं जिनसे छात्रों को हमेशा दूर रहना चाहिए, नहीं तो उसका जीवन व्यर्थ हो जाता है। वे दोष निम्नाङ्कित हैं—

[बहुसुहृदनुवृत्तिः प्रक्रिया चातिगुर्वी
लिखनविधिविरागः पुस्तिकाऽशोधनञ्च।
स्थितिरपि निजगेहे विह्वलत्वं विषादः
श्वशुरगृहनिवासो मूर्खताहेतुरष्टौ ॥]

अधिकसंख्यक मित्र बनाना, अधिक कार्यों में फंसे रहना, लिखने से जी चुराना, पुस्तक का शोधन न करना, अपने ही घर पर हमेशा रहना, जल्दी दुःखी हो जाना और ससुराल में अधिक दिन तक रहना—ये आठ आचरण मूर्खता के होते हैं अतः छात्रों को इनसे दूर रहना चाहिए।

३१. काशी : वाराणसी

काशी का ही दूसरा नाम वाराणसी है। यह आर्यों की प्राचीनतम नगरी है। वेदों, पुराणों तथा अन्य धर्मग्रन्थों में भी काशी का वर्णन हैं। धार्मिक एवं पौराणिक दृष्टि से काशी भगवान शंकर के त्रिशूल पर बसी है। यह साक्षात् भगवान शंकर की राजधानी हैं और भगवती अन्नपूर्णा परामबा इसकी अधिष्ठात्री हैं।

[[1]काशी की महिमा के विषय में तुलसीदासजी ने कहा है—

मुक्ति जन्म महि जानि, ज्ञान खानि अघ हानिकर।
जहँ बस सम्भु भवानि, सो कासी सेइअ कस न॥]

सम्पूर्ण धरातल पर काशी ही एक अनुपम नगरी है जहाँ मृत्यु–जैसा अमंगल भी मङ्गल माना जाता है (मरणं मङ्गलं यत्र)। ज्ञान की तो यह खानि ही है। यहाँ गली-गली में अभी भी ऐसे विद्यालय हैं जहाँ वेद, वेदान्त आदि विज्ञानों की शिक्षा निःशुल्क प्रदान की जाती है।

विद्या के केन्द्र काशी की यह विशेषता है कि यहाँ पर तीन-तीन विश्वविद्यालय हैं—काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय एवं काशी विद्यापीठ। मालवीय पुल या गंगापार से देखने पर काशी धनुषाकार मालूम होती है। काशी की सायंकालीन छवि देखकर, उसके समन्ततः टिमटिमाते दीपकों व प्रखर-प्रकाशकारी विद्युत् के बल्बों को देखकर दर्शक का मन प्रसन्न हो उठता है। विदेश का प्रमुख व्यक्ति, जो भारत आता है, काशी का दर्शन अवश्य करता है।

काशी में सभी धर्मावलम्बी व्यक्ति रहते हैं। यहाँ की गलियाँ, सीढ़ियाँ, संन्यासी तथा नंदी (सांड़) प्रसिद्ध हैं। काशी में निवास करने तथा मृत्यु प्राप्त करने की कामना से दूर-दूर से लोग आते हैं। विद्यार्थी व मोक्षार्थी दोनों का अनुपम संगम यहीं देखने को मिलता है। नाना प्रकार के कष्ट सह कर भी यहाँ रहना लोग पुण्यजनक मानते हैं।

---

१. सर्वत्र ब्राकेट [ ] बन्द पाठ रचना-लेखन की दृष्टि से अनावश्यक हैं।

[कहावत भी है--

चना चबैना गंगजल जौ पुरवै करतार।
काशी कबहुँ न छाँड़िये विश्वनाथ दरबार ॥

संस्कृत के सुप्रसिद्ध कवि श्रीहर्ष ने भी लिखा है--

वाराणसी निविशते न वसुन्धरायां
तत्र स्थितिर्मखभुजां भुवने निवासः
तत्तीर्थमुक्तवपुषामत एव मुक्तिः
स्वर्गात् परं पदमुदेतु मुदे तु कीदृक् ॥]

३२. गंगा-महिमा

गंगाजी हिमालय से निकलती हैं और कलकत्ता में हुगली नामक स्थान पर समुद्र में गिरती हैं। पुराणों एवं शास्त्रों में गंगाजी का पर्याप्त महत्त्व वर्णित है। नित्यप्रति गंगास्नान करने से किसी प्रकार का रोग नहीं होता और असाध्य रोग भी गंगा-सेवन करने से ठीक हो जाते हैं।

[धार्मिक दृष्टि से गंगा का विशेष महत्त्व है, पुराणों में लिखा है—

गंगा गंगेति यो ब्रूयात् योजनानां शतैरपि।
मुच्यते सर्व पापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥]

गंगा की एक विलक्षण विशेषता यह है कि उसके जल में कभी भी कीड़े नहीं पड़ते, चाहे वह वर्षों किसी बर्तन में रक्खा रहे।

लोकोपकार की दृष्टि से भी गंगा का मैदान भारत में बहुत उपजाऊ है। प्राचीन समय में जब कि यातायात के समुचित साधन नहीं थे, गंगा के द्वारा ही व्यापार होता था। कानपुर, इलाहाबाद, वाराणसी, पटना आदि बड़े-बड़े प्राचीन समय के व्यापारिक-केन्द्र इसी के तट पर बसे हुए हैं। गंगा के महत्त्व के विषय में कई कवियों ने गंगाजी का बड़ा ही महत्त्वपूर्ण वर्णन किया है।

[हिन्दी के श्रेष्ठ कवि पद्माकर ने गंगाजी के महत्त्व का 'गंगा लहरी' नामक पुस्तक में वर्णन किया है—

पापी एक जात हुतो गंगा के अन्हाइवे कौं
तासों कहे कोऊ एक अधम अयान में।
जाउ जनि पंथी उत विपति विशेष होति-
मिलैगौ महान् कालकूट खान पान में।
कहै पद्माकर भुजङ्गनि बधैगे अंग।
संग में सभारी भूत चलैगे मसान में।
कमर कसैंगे गजखाल ततकाल विना-
अंबर फिरैगौ तू दिगम्बर की दिसान में॥

इस कवित्त में कवि ने व्याजस्तुति अलंकार के माध्यम से कहा है कि गंगा में स्नान करने से स्नान करने वाला शिवजी बन जाता है।

इसी प्रकार संस्कृत में भी अनेक कवियों और भक्तों ने गंगा के विषय में बहुत-सी रचनाएँ तथा स्तुतियाँ लिखी हैं।]

३३. ग्रहण

चन्द्रग्रहण तथा सूर्यग्रहण दो प्रकार के ग्रहण माने जाते हैं। पौराणिक दृष्टि से सूर्य या चन्द्रमा को जब राहु ग्रसता है तभी ग्रहण माना जाता है किन्तु ज्योतिष शास्त्र तथा नवीन वैज्ञानिकों के मतानुसार चन्द्र तथा सूर्य के बीच में पृथ्वी के आ जाने पर चन्द्रग्रहण और सूर्य तथा पृथ्वी के बीच में चन्द्र के आ पड़ने पर सूर्यग्रहण का होना माना जाता है। भारतीय ज्योतिषी भी इसी मत को मानते हैं और उनके मत से भी चन्द्रमा पर भू-भा रहती है। पौराणिक मत का भी अभिप्राय यही है किन्तु कथात्मक रूप से होने के कारण वह गल्प प्रतीत होता है। वास्तव में पुराणों में प्रतीकात्मक व रहस्यात्मक रूप से विषयों का प्रतिपादन है। अतः ग्रहण का पौराणिक सिद्धान्त भी सत्य है।

वेदों में सूर्य व चन्द्रमा की पूजा का उल्लेख है। ये दोनों ही देव माने

गए हैं। जब इनके ऊपर संकट आता है तो हमलोग उस समय जप, तप, दान आदि करते हैं।

चन्द्रग्रहण पर स्नान करने का विशेष महत्त्व काशी में तथा सूर्यग्रहण पर कुरुक्षेत्र में है। भारत के कोने-कोने से धर्मप्राण जनता ग्रहण के समय उपर्युक्त या सामान्य तीर्थों तथा गंगा-यमुना आदि पवित्र नदियों में स्नान करने के लिए उमड़ पड़ती है। ग्रहण के समय मनुष्य तीन बार स्नान करते हैं। प्रथम स्नान ग्रहणस्पर्श के समय किया जाता है, द्वितीय स्नान मध्यम समय में किया जाता है, और तृतीय स्नान मोक्ष के समय किया जाता है। चन्द्रग्रहण पूर्णिमा को तथा सूर्यग्रहण अमावास्या को ही होना निश्चित है।

●

३४. विजयादशमी (दशहरा)

भारतीय वर्णव्यवस्था के अनुसार विजयादशमी मूल रूप से क्षत्रियों का त्योहार है, किन्तु सभी वर्ण के लोग समानभाव से मिलकर इसे मनाते हैं। कहा जाता है कि भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ने रावण को इसी दिन मारा था और इसी दिन उनकी विजय घोषित की गई थी। तभी से लोग उसको विजयादशमी कहने लगे। संभवतः दश शिर वाले रावण का वध इसी दिन होने से लोग इसे दशहरा भी कहते हैं। विजयादशमी का पर्व आश्विन शुक्ल दशमी को होता है। उस दिन क्षत्रिय तथा राजा लोग आयुधों, घोड़ों तथा हाथियों का भी पूजन करते हैं। चातुर्मास्यव्रत की समाप्ति भी इसी दिन होती है। बंगाली लोग नौ दिन नवदुर्गा का पूजन करके विजयादशमी को उसका विसर्जन करते और बड़ी धूम-धाम से प्रतिमा को जल में प्रवाहित करते हैं। कई स्थानों पर रामलीला की पूर्णाहुति विजयादशमी को होती है और इसी दिन रावण का वध भी होता है। विजयादशमी के अवसर पर कई स्थानों पर बड़े-बड़े मेले भी लगते हैं। प्रायः सर्वत्र ही इस दिन शमी नामक वृक्ष का पूजन किया जाता है और नगर की सीमा के बाहर जाकर नीलकण्ठ पक्षी का दर्शन

मंगलजनक माना जाता है। भारतवर्ष में कलकत्ता, प्रयाग, हैदराबाद आदि स्थानों का दशहरा-उत्सव दर्शनीय होता है।

३५. दीपावली

दीपावली शब्द का अर्थ है दीपों की पंक्ति। इस दिन घरों के चारों ओर मालाकार रूप में दीपों की पंक्ति सजाई जाती है इसलिये इस पर्व का नाम दीपावली पड़ा है। कहा जाता है कि इस दिन श्रीरामचन्द्रजी रावण का वध करके वनवास की अवधि पूरी कर अयोध्या वापस आये थे। उनके आगमन के उल्लास में सम्पूर्ण अयोध्या नगरी में दीपों की पंक्तियाँ सजाकर उत्सव मनाया गया था। उसी समय से यह पर्व प्रचलित हो गया और धीरे-धीरे इसने भारतव्यापी पर्व का रूप धारण कर लिया।

दीपावली से एक माह पूर्व से ही सभी लोग गृहों की स्वच्छता, तथा रंग व सफेदी की व्यवस्था में व्यस्त हो जाते हैं।

इस दिन सायंकाल प्रमुख रूप से लोग लक्ष्मीजी की पूजा करते हैं। व्यापारी व पूँजीपति लेखनी, मसीपात्र (दवात) व अपने बहीखाता की भी पूजा करते हैं और दीपमालाएँ सजाते हैं। दीपावली नवान्न-लक्ष्मी के भी स्वागत का प्रतीक है। धान, बाजरा तथा ज्वार आदि की फसलें दीपावली के बाद ही तैयार होती हैं। दीपावली के अवसर पर स्वच्छता तथा चूना करने आदि से रोगजनक कीटाणुओं का अन्त हो जाता है और लोगों को स्वास्थ्य-लाभ में सहायता मिलती है। अनेक गुणों के होते हुए भी इस पर्व में एक दोष यह है कि इस दिन अच्छे-अच्छे लोग भी द्यूतक्रीड़ा (जुआ खेलना) बुरा नहीं समझते। दीपावली के हर्षोल्लास में असावधान रहने के कारण रात्रि में आतिशबाजी से भी प्रतिवर्ष अनेक दुर्घटनाएँ होती देखी-सुनी जाती हैं। इसका सबको विशेष ध्यान रखना चाहिए।

३६. होली

होली भारत का सर्वाधिक उल्लासमय महोत्सव है। इसके मूल में एक पौराणिक कथा इस प्रकार है--प्राचीन समय में हिरण्यकशिपु नामक एक दैत्य राजा था। वह स्वयं को भगवान् मानता था किन्तु उसका पुत्र प्रह्लाद भगवान् विष्णु का अनन्य भक्त था। हिरण्यकशिपु ने उसे विष्णुभक्ति से विरत करने के लिए कई उपाय किये किन्तु प्रह्लाद न माना। अन्त में उसने अपनी होलिका नाम की बहन को प्रह्लाद के मारने का भार सौंपा। होलिका को अग्नि में न जलने का वरदान था। वह उसे लेकर अग्नि में बैठ गई। किन्तु भगवान् की कृपा से प्रह्लाद बच गया और होलिका जल गई। सारी प्रजा ने होलिका को गालियाँ दीं और प्रह्लाद के बचने की प्रसन्नता में बड़ा महोत्सव मनाया। तभी से इस उत्सव का प्रचलन हुआ। आज इसे मनाने की विधि भी इसके उसी घटना से संबद्ध होने का द्योतक है।

गाँव-गाँव में फाल्गुनी पूर्णिमा की रात्रि को पहले से इकट्ठी की हुई लकड़ियों के ढेर में आग लगा दी जाती है, लोग पूजा-प्रदक्षिणा करते हैं, अश्लील शब्दों का प्रयोग करते हैं तथा सभी वर्ण और वर्ग के लोग सब प्रकार का वैर एवं भेदभाव भूलकर, मिलजुल कर एक दूसरे पर रंग-अबीर-गुलाल छोड़ते हैं। जहाँ-तहाँ टोलियाँ बनाकर स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध सभी लोग होली गाते हैं तथा उत्फुल्ल दिखाई पड़ते हैं। देश-काल-भेद से इस उत्सव को मनाने की प्रथा में अनेक भेद हैं।

भारतवर्ष में मथुरा, वृन्दावन तथा नन्दगाँव-बरसाने की होली प्रसिद्ध है। होलिकोत्सव ही सम्भवतः प्राचीन काल में काम-महोत्सव, वसन्तोत्सव आदि रूपों में राजाओं द्वारा मनाया जाता था। अनेक वैज्ञानिक तथा आयुर्वेदिक दृष्टिकोणों से भी इस महोत्सव के औचित्य का समर्थन किया जाता है। कुछ लोग इसे नव वैक्रम वर्ष का स्वागत तथा कुछ नवान्न का स्वागत भी मानते हैं।

होली के हुडदंग में कहीं-कहीं मार-पीट, तेजाब फेंकने आदि की अप्रिय

घटनाएँ भी होती देखी-सुनी जाती हैं। अतः प्रयत्नपूर्वक इन विकृतियों से सावधान रहना उचित है।

३७. श्रीकृष्णजन्माष्टमी

भाद्रपद कृष्ण अष्टमी को श्रीकृष्णजन्माष्टमी महोत्सव मनाया जाता है। इस दिन भगवान् श्रीकृष्ण ने पृथ्वी का भार हरने के उद्देश्य से अपने मामा कंस के कारागार में वसुदेव तथा देवकी के पुत्र रूप में अवतार लिया था। उस समय ठीक अर्धरात्रि का समय था।

इस दिन प्रायः प्रत्येक हिन्दू प्रातःकाल ही पवित्र जलाशय में स्नान कर व्रत करता है। घरों तथा मन्दिरों की सफाई आदि होती है। सजावट के लिए फूल-माला, मिट्टी आदि के विविध प्रकार के खिलौने, वन्दनवार आदि जुटाए जाते हैं। पूजा के लिए धूप, दीप, नैवेद्य आदि तैयार किया जाता है। सायंकाल होते ही यत्र-तत्र प्रकाश की बहुरंगी व्यवस्था दिखाई पड़ने लगती हैं।

ठीक आधी रात के समय मन्दिरों तथा घरों में बच्चे-बूढ़े, स्त्री-पुरुष सब मिलकर विधि-विधान से भगवान् श्रीकृष्ण का श्रद्धा-भक्ति से पूजन-आरती करते और उनका जन्मोत्सव मनाते हैं। सर्वत्र एक साथ ही शंख-घण्टा आदि पवित्र वाद्यों की ध्वनि गूँज उठती है। लोग इधर-उधर मंदिरों में भगवान् की झाँकी देखने निकल पड़ते हैं। इसके बाद फलाहार करते तथा प्रसाद, चरणामृत आदि ग्रहण करते हैं।

इस दिन प्रायः सभी विद्यालयों, संस्थाओं आदि में अवकाश रहता है तथा समाचार-पत्रों में श्रीकृष्णजी के जीवन से संबंधित लेख लिखे जाते हैं। दिन-भर जहाँ-तहाँ विद्वानों के प्रवचन, श्रीमद्भागवत की कथा और कीर्तन सुनने को मिलते हैं।

इस प्रकार वर्ष में एक बार पावस ऋतु में आकर यह श्रीकृष्ण जन्माष्टमी हम सब के मन में सदाचार की स्थापना तथा अत्याचार-पापाचार के विनाश के लिए दैवी भावों को उद्‌बुद्ध कर जाती है।

३८. सत्संग

सत्संग का अर्थ है सज्जन व्यक्तियों का साथ। साधु व्यक्तियों के संग से मनुष्य में स्वाभाविक साधुता आ जाती है और ज्ञान प्राप्त होता है। सत्संग की महिमा सर्वत्र वर्णित है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने रामचरित मानस में सत्संगति की बड़ी प्रशंसा की है।

सत्संगति के बिना ज्ञान नहीं हो सकता। मुद और मंगल का मू कारण सत्संग ही है। दुष्ट व्यक्ति भी सत्संगति से सुजन हो जाते हैं।

जो जिस प्रकार का संग करता है उसको उसी प्रकार का फल मिलत है। जैसे एक ही स्वाति बिन्दु यदि केला के गर्भ में पड़ता है तो कर्पू बन जाता है, गज के मस्तक पर पड़ता है तो गजमुक्ता बन जाता है औ सीप में पड़ता है तो मोती बन जाता है, साँप के मुँह में पड़ने पर मणि ब जाता है।

[अतः कवि ने कहा हैं—

जेहि जैसी संगति करी, सो तैसौ फल लीन।
कदली, सीप, भुजङ्ग मुख, बूँद एक गुण तीन ॥]

सत्संगति दो प्रकार की होती है, पहली सजीव, दूसरी निर्जीव।

सजीव संगति का तात्पर्य साधु, महात्मा एवं विद्वानों की संगति करन उनसे वार्तालाप करना, उनके उपदेश सुनना, उनके साथ बैठकर विच करना तथा उसी का मनन व निदिध्यासन करना। इस प्रकार की सत्संग का प्रभाव शीघ्र ही मनुष्य पर पड़ता है।

दूसरी निर्जीव संगति का तात्पर्य है--विद्वानों की लिखी पुस्तकें पढ़ और उनके सिद्धान्तों व विचारों का मनन करना। आजकल इ सत्संगति के कारण हम विदेशी विद्वानों की संगति घर बैठे ही कर रहे किन्तु इसका प्रभाव शीघ्र नहीं होता, सत्संगति से दुराचारी, सदाचा शठ, सज्जन एवं अभक्त भक्त हो जाते हैं। वाल्मीकि-जैसे डाकू व्य ब्रह्मर्षि बन गये, अंगुलिमाल जैसा बर्बर डाकू बौद्धभिक्षु बन गया। अ

अन्य कर्मों का फल अप्रत्यक्ष है किन्तु सत्संग का फल प्रत्यक्ष है। सत्संगति सदा सुखप्रद होती है और कुसंगति दुःखप्रद होती है।

[सन्त कबीर ने कहा हैं--

कबिरा संगति साधु की हरै और की व्याधि।
संगति बुरी असाधु की आठौ पहर उपाधि॥]

३९. मातृ-प्रेम

सच्चे प्रेम का स्वरूप वही होता है जिसमें वासना तथा स्वार्थ नहीं होते। प्रेम में त्याग एवं बलिदान की प्रधानता होती है। प्रेम केवल देना जानता है, लेना नहीं। माता का प्रेम ऐसा ही विशुद्ध एवं अहेतुक प्रेम है, जिसकी त्रैलोक्य में कोई उपमा नहीं। माता अपने पुत्र का कभी अहित नहीं कर सकती और न उसके अकल्याण की कामना ही कर सकती है। इसीलिये शंकराचार्यजी ने कहा है--कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति।

धर्मशास्त्रकारों ने माता को ही सबसे बड़ा गुरु माना है। पिता की अपेक्षा माता का स्थान दश गुना होता है। माता पुत्र के लालन-पालन के लिए जिन विविधविध कष्टों का अनुभव करती है उनसे किसी भी प्रकार उऋण नहीं हुआ जा सकता। वह व्यक्ति संसार में अभागा ही है जिसे माता का स्नेह प्राप्त नहीं हुआ। इतिहास, पुराण, रामायण आदि में तो मातृप्रेम के एक-से-एक अनूठे उदाहरण देखने को मिलते ही हैं, प्रत्यक्ष भी मनुष्य, पशु, पक्षी, कीटादि योनियों में सन्तति के प्रति माता का अहेतुक प्रेम देखते ही बनता है। यह कथन अत्युक्ति नहीं है कि माता की दृष्टि में अमृत होता है। सचमुच ही शरीर पर माता की वात्सल्यमयी दृष्टि पड़ते ही प्राणी रोग-शोक से निर्मुक्त हो जाता

है। माँ गान्धारी की दृष्टि पड़ते ही दुर्योधन के शरीर का वज्र हो जान
स्पष्ट निदर्शन है।

धन्य हैं वे प्राणी, जिन्हें सुदीर्घ काल तक माता का प्रेम प्राप्त होता
रहता है।

४०. ग्रामसुधार

भारतवर्ष ग्रामप्रधान देश है। भारत का वास्तविक दर्शन ग्रामों मे ही होता है, जहाँ का मुख्य व्यवसाय कृषि है। किन्तु आजकल ग्रामीण व्यक्तियों का ध्यान कृषिकार्य को छोड़कर नौकरी करने तथा शहरों की ओर अधिक आकृष्ट होता दिखाई पड़ रहा है। इसका मूल कारण यही प्रतीत होता है कि एक तो अतिवृष्टि, अनावृष्टि तथा शीत-प्रकोप आदि के कारण अनाज की उपज कम हो गई है, दूसरे सरकारी करवृद्धि अधिक हो गई हैं अतः कृषि-कार्य में ग्रामीणों को लाभ की सम्भावना ही नहीं रह गई है। इधर नौकरी करने वालों को माह के अंत में थोड़ी या बहुत एक निश्चित द्रव्य-राशि प्राप्त तो अवश्य हो जाती है। बेचारे क्या करें, विवश होकर नौकरी की ओर आकृष्ट होते हैं। शिक्षा, मनोरंजन, खेल कूद, आमोद-प्रमोद तथा साफ-सुथरे रहने के साधन भी शहरों की अपेक्षा गाँवों में नहीं के बराबर हैं। अतः शहरों की ओर उनका आकृष्ट होना स्वाभाविक है। ऐसी स्थिति में जबतक कृषि की उपज बढ़ाने के समुचित साधन एकत्रित नहीं किये जायँगे, कर का भार कम न किया जायगा तथा शिक्षा-मनोरंजनादि के साधन ग्रामों में सुलभ नहीं किए जायँगे तबतक कृषि के प्रति आकर्षण तथा ग्रामों की उन्नति होना असंभव है। अशिक्षा के कारण वे पारस्परिक कलह, पारस्परिक द्वेष, एक दूसरे के अहितचिन्तन आदि दुष्टकर्मों में अधिक व्यस्त रहते हैं। अतः उनके इन दोषों को दूर करने के लिए ग्रामों में विद्यालयों, वाचनालयों, समाचार पत्रों तथा रेडियो आदि का उत्तम प्रबंध किया जाना चाहिए। ग्राम की

गंदगी को दूर करने के लिए सफाई का प्रबन्ध तथा कूड़ा फेंकने का स्थान नियत किया जाना चाहिए। इसी प्रकार दूषित जल के निकलने के लिए पक्की नालियों तथा गलियों, सड़कों आदि का निर्माण किया जाना चाहिए।

यदि शीघ्र ऐसा न किया गया तो ग्रामों की अवनति अवश्यम्भावी है और तब भारत की उन्नति में बड़ी बाधा उपस्थित हो सकती है।

४१. दैव दैव आलसी पुकारे

[उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः।
दैवेन देयमिति कापुरुषा वदन्ति॥
दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या।
यत्ने कृते यदि न सिद्धयति कोऽत्र दोषः॥]

प्रयत्न करने वाले पुरुषसिंह को ही सफलता और लक्ष्मी समालिङ्गन करती हैं एवं उसी को सुख की प्राप्ति होती है। किन्तु कायर पुरुष भाग्य की दुहाई देते हुए कहते हैं कि सुख-समृद्धि भाग्य से मिलती है। जो भाग्य में लिखा है वही मिलेगा। भाग्याश्रयी व्यक्ति को भाग्य का सहारा छोड़कर प्रयत्न करना चाहिये, यदि प्रयत्न करने पर भी कार्य की सिद्धि न हो तो पुनः प्रयत्न करना चाहिए। पुनः पुनः प्रयत्न करने पर कार्यसिद्धि न हो, यह असम्भव है। उद्योग करने पर ही कार्य की सिद्धि होती है। मनोरथ करने से कार्य सिद्ध नहीं होते। जैसे कोई सिंह शिकार के लिए निकले और अपने मन में विविध मनोरथ करने के पश्चात् सो जाय तो उसके मुख में हिरणादि जन्तु प्रविष्ट नहीं होंगे, उसके लिए तो उसको प्रयत्न करना ही पड़ेगा।

[उद्यमेन हि सिद्धयन्ति, कार्याणि न मनोरथैः।
नहि सुप्तस्य सिंहस्य, प्रविशयन्ति मुखे मृगाः॥]

उद्योगशील व्यक्ति अन्य के द्वारा अपनी उन्नति नहीं चाहता, वह अपनी उन्नति स्वयं करता है। अपने तेज से संसार को चमत्कृत करते हुए वह

अपनी अभ्युन्नति अपने आप करता है। सफलता उसकी दासी होती है और सम्पूर्ण कार्य-विधान उसके दास। वह स्वयं एक महान् पन्थ का संस्थापक हो जाता है।

[कहा भी है—

'लङ्घयन् खलु तेजसा जगत्।
न महानिच्छति भूतिमन्यतः'॥
'आलस्यं हि मनुष्याणां
शरीरस्थो महान् रिपुः'॥

आलस्य मानव का परम शत्रु है। वह उन्नति से विनाश की ओर ले जाता है। अतः आलस्य का सर्वथा परित्याग करना आवश्यक है।



४२. प्रभात-वर्णन

प्रभात-काल सृष्टि के नवीन उत्कर्ष का सूचक है। समस्त रात्रि प्रगाढ़ निद्रा में लीन रहने के अनन्तर प्राणी नवोदित प्रकाश का दर्शन करता है और अपने कार्य में लग जाता है। प्रभातकाल में सूर्योदय से पहले पूर्वाकाश की शोभा दिव्य दर्शनीय होती है। रात्रि के समय अरुण पल्लवों पर पड़ी हुई ओस की बूंदें प्रभातकाल में अनुपम शोभा धारण कर लेती हैं। जो लोग प्रातःभ्रमण के हेतु निकलते हैं उन्हें ही उस समय के प्रकृतिनिरीक्षण का अलौकिक आनन्द प्राप्त हो सकता है। वन-उपवनों में शीतल-मन्द-सुगन्ध समीर, पक्षियों का सुमधुर कलरव, नभोमण्डल की स्वर्गीय लालिमा आदि मानव-मन में नई स्फूर्ति, मनःप्रसाद, नई चेतना तथा नवीन शक्ति का संचार कर देती हैं। स्थिर तथा स्वच्छ जलाशयों पर पड़ते हुए विविध-वैचित्र्यपूर्ण सृष्टि के मनोमोहक प्रतिबिम्ब, तटवर्ती घाटों पर ब्राह्मणों, विद्वानों तथा ईश्वर-उपासकों के स्तुतिगान, मन्दिरों में घण्टे-घंटियों की सुमधुर झंकार मन में बलात् दैवी भावों को भरती प्रतीत होती हैं। विद्यालयों में वेद-व्याकरण आदि का श्रवणगोचर अध्ययन प्रारंभ हो जाता है। गो-दोहन तथा बछड़ों से बिछुड़कर चरने जाती हुई गौओं को देखकर

वात्सल्य रस का मानो प्रत्यक्ष आभास होने लगता है। प्रभात-वेला सृष्टि के कण-कण में मानो सचमुच ही सात्त्विक भाव बिखेर देती है।

प्रभातवेला को ब्राह्ममुहूर्त भी कहते हैं। ब्रह्मचिन्तन, शास्त्रचिन्तन एवं सांसारिक कार्यकलाप चिन्तन का यही सर्वोत्तम समय माना जाता है।

प्रभातकाल का केवल साहित्यिक व दार्शनिक महत्त्व ही नहीं, अपितु स्वास्थ्य एवं वैज्ञानिक दृष्टि से भी अपूर्व महत्त्व है।

[आयुर्वेदशास्त्र की तो साधिकार घोषणा है—

विगतघननिशीथे प्रातरुत्थाय नित्यं
पिबति खलु नरो यो घ्राणरन्ध्रेण वारि।
स भवति मतिपूर्णश्चक्षुषा तार्क्ष्यतुल्यो
वलीपलितविहीनः सर्वरोगैर्विमुक्तः ॥

४३. राष्ट्रीय झंडा

प्रत्येक देश का राष्ट्रीय झण्डा उस देश की मान-मर्यादा एवं प्रतिष्ठा का प्रतीक होता है। यदि झण्डे का सिर ऊँचा है तो देश का भी सिर ऊँचा है और यदि झण्डे का सिर नीचा हो जाता है तो देश का सिर, उसकी प्रतिष्ठा एवं मर्यादा भी समाप्त हो जाती है। इसीलिये हमारे यहाँ गीत में कहा जाता है—

'इसकी शान न जाने पावे।
चाहे प्राण भले ही जावें' ॥

१५ अगस्त सन् १९४७ को हमारा देश स्वतंत्र हुआ और स्वतंत्रता के प्रतीक रूप में यह तिरंगा झण्डा देश में फहराया गया। हमारे झण्डे के तीन रंग हैं, गहरा केसरिया, सफेद तथा गहरा हरा। केसरिया रंग बलिदान तथा आत्मशक्ति का सूचक है, सफेद रंग शक्ति एवं शान्ति का सूचक है और गहरा हरा रंग वीरता एवं विश्वास का चिह्न है।

झण्डे का आकार समुचित होना चाहिये। यदि उसकी चौड़ाई दो फुट है तो लम्बाई तीन फुट होनी चाहिये। राष्ट्रीय झण्डे का स्पर्श भूमि से कभी नहीं होना चाहिये। चक्र के अतिरिक्त उस पर अन्य कोई चिह्न नहीं होना चाहिये।

विधान परिषद में राष्ट्रीय झण्डे को प्रस्तुत करते हुए हमारे देश के युगपुरुष एवं सर्वजनप्रिय नेता स्वर्गीय पं० जवाहरलाल नेहरू ने कहा था—"हमारा राष्ट्रीय झण्डा साम्राज्यवादी झण्डा नहीं है, यह स्वतंत्रता का सच्चा प्रतीक है। इसके द्वारा स्वतंत्रता, आशा तथा बन्धुत्व का संदेश हम संसार के विभिन्न देशों में पहुँचायेंगे। यही झण्डा हमारा राष्ट्रीय गौरव है। झण्डे का मान हमारे राष्ट्र का मान है। हमें प्राणों पर खेलकर भी इसकी रक्षा तथा सम्मान के लिए सदैव तैयार रहना चाहिये।"

४४. सैनिक-शिक्षा

स्वतन्त्र भारत दासता की शृङ्खला से मुक्त है, भारत का प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र है। स्वतंत्रता की रक्षा एवं अपने स्वत्व की रक्षा के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति सैनिक बने ताकि उसमें अपने स्वत्व-रक्षा की योग्यता उत्पन्न हो। इसीलिये सभी छात्रों को सैनिक शिक्षा प्रदान की जाती है।

साम्राज्यवादी राष्ट्रों की सदा से यह धारणा रही है कि वे अपने साम्राज्य का विस्तार करें। ऐसी अवस्था में अपनी रक्षा के लिए सैनिक शिक्षा आवश्यक है।

हमारीं यह सैनिक शिक्षा के सत्य-अहिंसात्मक सिद्धान्त के विरुद्ध किसी हिंसात्मक कार्य या राज्य-विस्तार के विचार से नहीं हो रही है। इसका प्रधान लक्ष्य आत्मरक्षा है।

सैनिक शिक्षा का संगठन विद्यार्थीमात्र में ही नहीं, अपितु सामान्य जनता में भी होना चाहिए। सैनिक शिक्षा से मानव में अपने कर्तव्य के प्रति दायित्व की भावना, अनुशासनप्रियता, देशभक्ति की भावना, कर्तव्यपरायणता तथा श्रम के कारण सर्वाङ्ग-पुष्टि के साथ-ही-साथ, आत्मरक्षा एवं देशरक्षा की शक्ति भी उत्पन्न होती है।

४५. बालचर

बालचर शब्द का अर्थ है--निःशुल्क सेवा करने वाला बालक (बाल-स्वयंसेवक)। अब संसार के सभी सभ्य देशों से बालचर संस्था की स्थापना हो गई है। इसका सर्वप्रथम जन्म दक्षिणी अफ्रीका में हुआ था। भारतीय अंग्रेजों में तो इसका प्रचार प्रारम्भ से ही था, किन्तु विशुद्ध भारतीय व्यक्ति उससे वंचित थे। भारतीयों के भाग्य से डा० एनीबेसेन्ट तथा महामना पं० मदनमोहन मालवीयजी के प्रयत्नों से भारतीय व्यक्तियों को भी इस संस्था में भाग ग्रहण करने का सुअवसर प्राप्त हुआ।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् ७ नवम्बर सन् १९५० को भारत स्काउट तथा गर्ल गाइड की स्थापना हो चुकी है। सम्पूर्ण भारतीय बालक इस संस्था से सम्बंधित हैं।

भारत के प्रत्येक शिक्षाकेन्द्र में इसका प्रचार एवं प्रसार हो रहा है और इसकी संस्थाएँ भी खुल गई हैं। बालचर शिक्षक इस शाखा का संचालन करता है। आठ वर्ष से अधिक अवस्था वाला कोई बालक इस संस्था का सदस्य हो सकता है। बालकों को दलों में विभक्त कर दिया जाता है, प्रत्येक दल का पृथक्-पृथक् नामकरण होता है। बालचरशिक्षक प्रत्येक दल को शिक्षा प्रदान करता है। प्रत्येक जिले के बालक जिला स्काउट कमिश्नर एवं सम्पूर्ण प्रान्त के बालक प्रान्तीय स्काउट कमिश्नर के अधीन होते हैं।

बालचरों का झंडा, उनकी वेशभूषा, उनकी रहन-सहन पृथक् होती है। संस्था द्वारा उनको पारस्परिक सहायता, सत्यता एवं देशभक्ति की शिक्षा प्रदान की जाती है। प्रारम्भिक चिकित्सा, शिष्टता एवं संकेतों से वार्तालाप करना, भोजन बनाना, गाँठ लगाना आदि अनेक लाभप्रद शिक्षाएँ दी जाती हैं।

शिक्षा का माध्यम खेल-कूद रहता है जिससे कि बालकों के मन में स्फूर्ति रहे तथा उनका मन न ऊबे।

शिक्षित बालचर गाँवों में जाकर शिक्षा प्रदान करते हैं। दीन-दुखियों की सहायता करते हैं, डूबते हुए मनुष्यों की रक्षा करते हैं तथा मेले आदि में प्रबन्ध करते हैं।

भारतीय बालचरों ने मेला व प्रदर्शनियों में अच्छा कार्य किया है। इसके राष्ट्रीय सम्मेलन भी होते हैं। इन सम्मेलनों में प्रत्येक माता-पिता गौरव के साथ अपने बच्चों को भेजते हैं। इस संस्था की उत्तरोत्तर उन्नति होती जा रही है।

४६. रेलयात्रा

परीक्षा समाप्त होते ही हमने कुछ मित्रों के साथ आगरा जाने का निश्चय किया। सब लोगों ने अपना-अपना सामान तैयार किया और आधा घण्टे में वाराणसी स्टेशन पहुँच गए। टिकट लेने के पश्चात् प्लैट फार्म पर पहुँचे तो देखा बड़ी भीड़ थी। सभी लोग गाड़ी की प्रतीक्षा में थे। हमलोग भी इधर-उधर देख ही रहे थे कि भक्-भक् करता, धुआँ उगलता दानवाकार इंजन गाड़ी को लिए–दिए आ धमका। गाड़ी रुकते ही भीतर-बाहर खलबली और हो-हल्ला मच गया। उतरने वाले चाहते थे कि हम पहले उतरें और चढ़ने वाले होड़ लगाए थे कि हम पहले

चढ़ेंगे । कोई अपना सामान किसी के सिर पर फेंक रहा है, कोई खिड़की के रास्ते चढ़ रहा है, तो कोई वहीं से गठरी बनकर उतर रहा है । कोई सामने रास्ता न देख पीछे की ओर को उतर रहा है । किसी का एक जूता छूट गया तो किसी की चप्पल छूट गई । खींचातानी में किसी-किसी के कपड़े चिथड़े हो गये । स्त्रियों की दशा चिन्तनीय थी । यह सब देख-सुनकर मैं तो भौचक्का हो गया । मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि जब तक यात्री उतर नहीं जाते तब तक चढ़नेवालों में धैर्यबुद्धि क्यों नहीं उत्पन्न हो जाती । मेरा एक साथी बोल पड़ा--'भाई, रेलयात्रा भी विपत्ति का घर ही है ।'

अस्तु, किसी प्रकार हमलोग भी गाड़ी में चढ़ गए । गाड़ी सीटी देकर चल पड़ी और मालवीय पुल पार करके मुगलसराय जंक्शन पहुँची । वहाँ हमने गाड़ी बदली और रात को एक बजे के बाद तूफान एक्सप्रेस से आगरा के लिए रवाना हुए । रात्रि का समय था । गाड़ी अन्धकार को चीरती द्रुत-गति से चली जा रही थी । बाहर की कालिमा से ऊबकर सब लोगों की भाँति हम सबने भी आँखें मूँद लीं । सुबह नींद टूटी तो देखा कि गाड़ी कान-पुर स्टेशन पर खड़ी है । वहाँ पर बहुत से लोग चढ़े तथा बहुत से उतरे । कई डब्बे गाड़ी में से अलग हुए और कई और लगे । लगभग ४५ मिनट वहाँ भी प्लेटफार्म पर कुछ उठा-पटक देखते हुए हमने मुँह-हाथ धोया और गाड़ी चल पड़ी । जो चली तो कई और बड़े स्टेशनों को पार करती हुई दोपहर में आगरा फोर्ट स्टेशन पहुँच गई । गाड़ी में से ही हमलोगों ने ताजमहल की गगनचुम्बी मीनारें देखकर समझ लिया कि यही आगरा है । अस्तु, शीघ्र ही स्टेशन पर पहुँचकर गाड़ी रुकी और हमलोग उतरकर ताजमहल पहुँचने की योजना बनाने में लग गए ।

४७. ताजमहल

संसार की कतिपय आश्चर्यजनक वस्तुओं में ताजमहल का भी प्रमुख स्थान है। यह आगरा स्टेशन से कोई दो मील यमुना नदी के दाहिने किनारे पर स्थित है। इसका निर्माण प्रसिद्ध मुगल सम्राट् शाहजहाँ ने अपनी प्रिय बेगम मुमताजमहल के स्मारक रूप में कराया था। बीस हजार कारीगर तथा असंख्य श्रमिकों द्वारा लगभग २० वर्षों में इस अपूर्व भवन का निर्माण हो सका। इसके बनाने में जो धन व्यय हुआ होगा उसका अनुमान भी असम्भव है। ताजमहल पहुँचने के पूर्व लाल पाषाणों से बने हुए एक विशालकाय द्वार में प्रवेश करना पड़ता है जहाँ सफेद पत्थरों पर कुरान की आयतें लिखी हुई हैं। इसके द्वार के पास ही एक प्रदर्शनगृह में सुरक्षित मुगल सम्राटों के चित्र इतने सजीव लगते हैं, मानो कुछ कहना ही चाहते हों। वहीं पर उनके अस्त्र-शस्त्र तथा बहुमूल्य पात्र भी हैं। भीतर आगे बढ़ने पर एक जलकुण्ड में खिले हुए कमल तथा बहुरंगी मछलियाँ विधाता की सृष्टि की विविधता का द्योतन करती हैं। मध्य भाग में १८६ वर्गफीट का संगमरमर का एक चबूतरा है जिस पर ताज स्थित है। चबूतरे के चारों ओर गगनचुम्बी भव्य मीनारें हैं जिस पर चढ़ने के लिए घुमावदार सीढ़ियाँ हैं। इन चारों मीनारों के मध्य संगमरमर के ऊँचे चबूतरे पर ताज का २७५ फीट ऊँचा विशाल गुम्बज है जिसके चारों ओर छोटे-छोटे अनेक गुम्बज हैं। ताज के चारों ओर संगमरमर के दालान हैं। ताज के मध्य भाग में मुमताजमहल की तथा उसी की बगल में शाहजहाँ की समाधि है। समाधि के चारों ओर जालीदार संगमरमर का घेरा है।

ताजमहल को बने तीन सौ वर्ष से अधिक हो गया किन्तु देखने पर प्रतीत होता है मानो अभी-अभी बनकर पूरा हुआ है। शरत्पूर्णिमा को तो ताजमहल की शोभा में सचमुच चार चाँद लग जाते हैं।

इस अनूठी रचना से मुगल सम्राट् शाहजहाँ ने केवल दो प्रेमी हृदयों को ही अमरत्व प्रदान नहीं किया प्रत्युत कला के प्रति अपने अद्‌भुत प्रेम-प्रदर्शन के साथ ही भारतीय कला का एक उत्कृष्ट नमूना भी संसार के समक्ष रख दिया है। जबतक ताज रहेगा तबतक कला की उच्चता का ताज भी भारत के सिर पर रहेगा और कला के अभिमानी देशों में भारत सिरताज बना रहेगा।



४८. चलचित्र

स्वभाव से ही मानव मनोरञ्जन-प्रिय होता है। कठोर श्रम के बाद उसके अपनयनार्थ मनोरञ्जन आवश्यक है और यह कार्य आजकाल चलचित्रों से ही अधिक सम्भावित है।

सर्वप्रथम चलचित्र का आविष्कार अमेरिका के प्रसिद्ध वैज्ञानिक एडिसन ने सन् १८६० में किया था। इसके बाद यह योरोप पहुँचा और अंग्रेजों के साथ इसने भारत में भी प्रवेश किया।

प्रारम्भ में चलचित्र मूक होते थे, पर्दे पर केवल चलते-फिरते चित्र ही दृष्टिगोचर होते थे। बीसवीं शताब्दी में ध्वनि का आविष्कार भी सफल हुआ और आज सारे संसार में इसका प्रचार हो गया है।

चलचित्र उद्योग में निर्माता का स्थान प्रमुख है। कलाकार एवं लेखक आदि के सहयोग से निर्माता चित्र तैयार करता है। चित्र देखने में लघुकाय प्रतीत होता है किन्तु इसमें लाखों रुपये व्यय होते हैं।

चलचित्र से मनोरञ्जन के साथ-ही-साथ समाज को शिक्षा भी मिलती है। सामाजिक चित्रों द्वारा समाज की कुरीतियाँ स्पष्ट हो जाती हैं। धार्मिक चित्रों द्वारा धार्मिक भावना दृढ़ होती है। किन्तु इस समय अश्लील चित्रों के कारण समाज में अनैतिकता फैल रही है। चलचित्र से हानि भी बहुत अधिक है। अधिक चित्र देखने से आँखें खराब होती

हैं और धन का अपव्यय भी होता है। यदि ऐतिहासिक, भौगोलिक, शैक्षणिक एवं धार्मिक चित्र तैयार किये जायँ तो निश्चय ही देश का कल्याण सम्भावित है।

४९. चीनी आक्रमण

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद भारत ने जब धर्मनिरपेक्ष तथा तटस्थ नीति एवं पञ्चशील के सिद्धान्तों की घोषणा की तथा पञ्चशील के सिद्धान्त का अभिप्राय व महत्त्व विश्व के समक्ष रक्खा, उस समय कई दूसरे देशों के साथ भारत के पड़ोसी देश चीन ने भी पञ्चशील के सिद्धान्तों की प्रशंसा एवं समर्थन करते हुए भारत के साथ अपना मैत्री सम्बन्ध स्थापित किया।

परम्परा के अनुसार चीन भारत का शिष्य भी है क्योंकि भगवान् बुद्ध से ही चीन ने शिक्षा ग्रहण की थी, और अब भी चीन में बौद्ध-धर्मानुयायी अधिक संख्या में हैं। इन द्विविध संबंधों के होते हुए भी चीन ने समय आने पर अपनी खलता का परिचय दे डाला। उसके विश्वासघात के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—भारत ने मैत्री संबंध का निर्वाह करते हुए ही तिब्बत पर चीन की प्रभुता स्वीकार की। किन्तु उसी समय चीन ने तिब्बत पर अत्याचार करना प्रारम्भ कर दिया। तिब्बत का धार्मिक गुरु दलाई लामा जब भारत की शरण में आये तो भारत ने नियमानुसार शरणागत की रक्षा की परन्तु चीन ने अक्टूबर सन् १९६२ में भारत की उत्तरी सीमा पर अचानक हमला कर दिया। यद्यपि चीनी लोग जन-संख्या में अधिक थे तथा उनको बर्फीली भूमि में रहने का अभ्यास भी था और भारतीय बहादुर सैनिक अल्प-संख्यक थे तथा उन्हें बर्फीली जमीन में रहने का अभ्यास नहीं था, फिर भी उन्होंने शत्रु के उपद्रवों को वीरता एवं धीरता से रोका। सत्यनिष्ठ

भारत को ऐसी आशा नहीं थी कि पड़ोसी, मित्र तथा बौद्ध धर्मावलम्बी चीन इस प्रकार धर्म और विश्वास का गला घोंटकर आस्तीन का साँप बन जायगा। विश्व के सभी राष्ट्रों ने जब चीन के इस कुत्सित व्यवहार की घोर निन्दा की और वे चीन के विरुद्ध भारत को सहयोग देने के लिए तैयार हो गए तब लज्जित और भयभीत होकर उसने युद्ध-विराम की घोषणा कर दी। किन्तु भारतीय अब भी सजग हैं। क्योंकि चीन-जैसे विश्वासघाती एवं लोलुप देश का क्या भरोसा? चीन की नीति विस्तारवादी है। सीमा-विस्तारार्थ ही उसने भारत की सीमा का उल्लंघन किया है, किन्तु भारत भी निर्बल नहीं, वह अपने सत्प्रयत्नों से अपनी एक-एक इञ्च भूमि वापस ले लेगा और विश्वासघाती चीन को मुँह की खानी पड़ेगी।

५०. हाथी

पृथ्वी पर रहने वाले सभी जीवधारियों में हाथी सबसे बड़ा जीवधारी है। जितना विशाल इसका शरीर होता है, उतना ही अधिक इसमें बल भी होता है। इसकी आँखें बहुत छोटी, पैर विशाल स्तम्भ के समान तथा कान सूप के समान बड़े होते हैं। हाथी जानवरों में सबसे अधिक बुद्धिमान् होता है। इसकी सूँड़ बहुत लम्बी होती है, इसी से यह नाक तथा हाथों का काम लेता है। बड़ी-से-बड़ी तथा छोटी-से-छोटी वस्तु को भी यह सूँड़ से उठा लेता है। सूँड़ में पानी भरकर वह अपने मुँह में डाल लेता है। हाथी की ऊँचाई ७ फीट से लेकर १४ फीट तक की होती है। हाथी के दो बड़े-बड़े दाँत बाहर निकले रहते हैं, हथिनी को ये दाँत नहीं होते हैं।

बर्मा, श्याम, भारत, अमेरिका, अफ्रीका आदि देशों में यह अधिकांश रूप में पाया जाता है। हाथी को यदि सिखाया जाय तो यह बहुत ही उपयोगी हो जाता है और बड़े कौशल से कार्य करता है। सरकस आदि में शिक्षित हाथी बड़े ही आश्चर्यकारक कार्य करता है। यह अधिकतर पेड़ों की हरी-हरी पत्तियाँ खाता है। केला इसको बहुत प्रिय है। मनुष्यों के लिए यह बहुत ही लाभदायक प्राणी है। रेल, मोटर, ट्रक, बैलगाड़ी आदि की जहाँ गति नहीं है वहाँ यह हर प्रकार का भारी सामान ढोता है तथा सवारी का काम देता है। इसके दाँत बड़े ही कीमती होते हैं। इसके दाँतों से चूड़ियाँ, बटन, कंघी आदि अनेक उपयोगी वस्तुएँ बनती हैं। हाथी बहुत ही मनस्वी प्रकृति का प्राणी होता है।

५१. घोड़ा

घोड़ा बहुत ही उपयोगी पशु है। वर्तमानकाल में प्राप्त होनेवाले घोड़ों का रंग कई प्रकार का होता है, जैसे काला, भूरा, लाल, चितकबरा आदि। यह घास, भूसा, दाना, चना आदि खाता है। यह सवारी के काम में आता है। इक्के, टाँगे, बग्घी, टमटम आदि में यह जोता जाता है तथा विदेशों में यह हल जोतने के काम में भी आता है। यह शक्ति का प्रतीक है। इञ्जिन आदि की शक्ति की माप इसी की शक्ति को इकाई मानकर होती है। युद्ध कार्यों में सेना आदि के लिए तो प्राचीन काल से लेकर अब तक इसकी आवश्यकता समान है। यह बड़ा समझदार तथा स्वाभिमानी होता है। महाराणा प्रताप का घोड़ा 'चेतक' इतिहासप्रसिद्ध है। अश्वशास्त्र में वर्णित इसके शुभ-अशुभ लक्षणों का मानव-जीवन पर बड़ा प्रभाव पड़ता है।

यह भारत, इंग्लैण्ड, अरब आदि देशों में अधिक पाया जाता है। घोड़ा की एक जाति और होती है जिसको दरियायी घोड़ा कहते हैं। यह पानी में ही रहता है तथा समुद्रों में अधिक पाया जाता है। कहीं-कहीं यह अजायब-घरों में भी देखने को मिलता है।

घोड़े की श्यामकर्ण जाति बहुत प्रसिद्ध है किन्तु अब उस जाति के घोड़े नहीं मिलते। प्राचीन समय में अश्वमेध यज्ञ के लिए यह घोड़ा पूजन करने के बाद छोड़ा जाता था और जो इसको पकड़ लेता था उसको यज्ञकर्ता राजा से युद्ध करना पड़ता था। घोड़ा बहुत ही साहसी जानवर होता है।



५२. गाय

पशुओं में गाय बहुत ही सीधा, उपयोगी तथा पवित्र प्राणी है। गाय संसार में सभी जगह प्राप्त होती हैं। भारतवर्ष में पंजाब तथा काठियावाड़ की गायें अधिक दूध देनेवाली होती हैं। इंग्लैण्ड की गायें तो प्रतिदिन ३० सेर से भी अधिक दूध देती हैं।

गाय हरी घास एवं चारा तथा खली-भूसा खाती है। गाय का दूध मानव प्रकृति के सर्वथा अनुकूल होता है। जंगल में चरनेवाली गायों का दूध अधिक लाभप्रद एवं पौष्टिक होता है। रोगी के लिए तो गाय का दूध अमृततुल्य लाभदायक होता है। इसके दूध व मक्खन से कई औषधियाँ व भोज्य सामग्रियाँ तैयार की जाती हैं। आर्थिक दृष्टि से भी गाय परमोपयोगी है। इसके बछड़े हल व गाड़ी में जोते जाते हैं तथा इसके गोबर व मूत्र से उत्तम खाद तैयार होती है। इसके चमड़े से अनेक उपयोगी वस्तुएँ तैयार की जाती हैं तथा हड्डी से भी उत्तम खाद बनती है। धार्मिक दृष्टि

से तो गाय की महत्ता सर्वोपरि है। गाय में हिन्दू लोग देवताओं का वास मानते हैं, इसीलिये उसकी पूजा करते हैं व उसके गोबर व मूत्र को पवित्र समझते हैं। प्रत्येक मांगलिक कार्य में इसके गोबर व मूत्र की आवश्यकता पड़ती है। पशुओं में गाय के समान आदर का स्थान किसी भी पशु का नहीं है। प्राचीन काल में सूर्यवंश के राजा दिलीप ने गाय की सेवा करके वंशवृद्धि करनेवाले सर्वगुणसम्पन्न 'रघु' नामक पुत्र को प्राप्त किया था, जिसके नाम से ही उनके वंश का नाम रघुवंश पड़ा। वेदों व पुराणों में भी गायों की महिमा वर्णित है। भगवान् श्रीकृष्ण ने भी गायों की सेवा की थी। गायों की महिमा अपार है।

५३. वर्षा-वर्णन (वर्षाऋतु)

भारतवर्ष में छः ऋतुएँ होती हैं। इनमें वर्षा का भी श्रेष्ठ स्थान है। वर्षाऋतु कृषकों के जीवन का मूलाधार है। वर्षा का वर्णन कवियों ने विविध प्रकार से किया है। श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी ने वर्षा का बड़ा ही रोचक वर्णन किया है—

वरषाकाल मेघ नभ छाये।
देखत लागत परम सुहाये।।

दोहा—लछिमन देखहु मोरगन, नाचत बारिद पेखि।
गृही बिरत जस हरख रत, बिस्नुभगत कहुँ देखि।।

दामिनि दमकि रही घन माँहीं।
खल की प्रीति यथा थिर नाहीं।।

बरषहिं जलद भूमि नियराये ।
यथा नवहिं बुध विद्या पाये ।।
छुद्र नदी भरि चलि उतराई ।
जस थोरे धन खल बौराई ।।
भूमि परत भा डाबर पानी ।
जिमि जीवहिं माया लपटानी ।।
सिमिटि-सिमिटि जल भरहिं तलावा ।
जिमि सदगुन सज्जन पहँ आवा ।।
सरिता जल जलनिधि महँ जाई ।
होइ अचल जिमि जिव हरि पाई ।।

हितोपदेशः

अनेकसंशयोच्छेदि परोक्षार्थस्य दर्शकम् ।
सर्वस्य लोचनं शास्त्रं यस्य नास्त्यन्ध एव सः ॥ १ ॥
अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम् ।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ॥ २ ॥
अरावप्युचितं कार्यमातिथ्यं गृहमागते ।
छेत्तुः पार्श्वगतां छायां नोपसंहरते द्रुमः ॥ ३ ॥
अल्पानामपि वस्तूनां संहतिः कार्यसाधिका ।
तृणैर्गुणत्वमापन्नैर्बद्ध्यन्ते मत्तदन्तिनः ॥ ४ ॥
आपदामापतन्तीनां हितोऽप्यायाति हेतुताम् ।
मातृजङ्घा हि वत्सस्य स्तम्भीभवति बन्धने ॥ ५ ॥
इज्याऽध्ययनदानानि तपः सत्यं धृतिः क्षमा ।
अलोभ इति मार्गोऽयं धर्मस्याष्टविधः स्मृतः ॥ ६ ॥
ईर्ष्यी घृणी त्वसन्तुष्टः क्रोधनो नित्यशङ्कितः ।
परभाग्योपजीवी च षडेते दुःखभागिनः ॥ ७ ॥
उत्सवे व्यसने चैव दुर्भिक्षे राष्ट्रविप्लवे ।
राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धवः ॥ ८ ॥
उत्तमस्याऽपि वर्णस्य नीचोऽपि गृहमागतः ।
पूजनीयो यथायोग्यं सर्वदेवमयोऽतिथिः ॥ ९ ॥
उशना वेद यच्छास्त्रं यच्च वेद बृहस्पतिः ।
स्वभावेनैव तच्छास्त्रं स्त्रीबुद्धौ सुप्रतिष्ठितम् ॥ १० ॥
कोऽर्थः पुत्रेण जातेन यो न विद्वान् न धार्मिकः ।
काणेन चक्षुषा किं वा चक्षुःपीडैव केवलम् ॥ ११ ॥
जातिमात्रेण किं कश्चिद्धन्यते पूज्यते क्वचित् ।
व्यवहारं परिज्ञाय वध्यः पूज्योऽथवा भवेत् ॥ १२ ॥

तृणानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी च सूनृता ।
एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन ॥ १३ ॥

दरिद्रान् भर कौन्तेय, मा प्रयच्छेश्वरे धनम् ।
व्याधितस्यौषधं पथ्यं नीरुजस्य किमौषधैः ॥ १४ ॥

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं विदुः ॥ १५ ॥

दुर्जनः परिहर्तव्यो विद्ययाऽलंकृतोऽपि सन् ।
मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयङ्करः ॥ १६ ॥

नदीनां शस्त्रपाणीनां नखिनां शृङ्गिणां तथा ।
विश्वासो नैव कर्तव्यः स्त्रीषु राजकुलेषु च ॥ १७ ॥

न मातरि न दारेषु न सोदर्ये न चात्मजे ।
विश्वासस्तादृशः पुंसां यादृङ् मित्रे स्वभावजे ॥ १८ ॥

नारिकेलसमाकारा दृश्यन्ते हि सुहृज्जनाः ।
अन्ये बदरिकाकारा बहिरेव मनोहराः ॥ १९ ॥

निर्गुणेष्वपि सत्त्वेषु दयां कुर्वन्ति साधवः ।
न हि संहरते ज्योत्स्नां चन्द्रश्चाण्डालवेश्मनः ॥ २० ॥

परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम् ।
वर्जयेत् तादृशं मित्रं विषकुम्भं पयोमुखम् ॥ २१ ॥

परोपदेशे पाण्डित्यं सर्वेषां सुकरं नृणाम् ।
धर्मे स्वीयमनुष्ठानं कस्यचित्तु महात्मनः ॥ २२ ॥

पानं दुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहोऽटनम् ।
स्वप्नश्चान्यगृहे वासो नारीणां दूषणानि षट् ॥ २३ ॥

मनस्यन्यद् वचस्यन्यत् कर्मण्यन्यद् दुरात्मनाम् ।
मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम् ॥ २४ ॥

माता वैरी पिता शत्रुः येन बालो न पाठितः ।
न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये बको यथा ॥ २५ ॥

यस्मिन् देशे न सम्मानो न च वृत्तिर्न च बान्धवः ।
न च विद्यागमः कश्चित् तं देशं परिवर्जयेत् ॥ २६ ॥
या ध्रुवाणि परित्यज्य अध्रुवाणि निषेवते ।
ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति, अध्रुवं नष्टमेव हि ॥ २७ ॥
यौवनं धन-सम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकिता ।
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम् ॥ २८ ॥
राजा कुलवधूर्विप्रा मन्त्रिणश्च पयोधराः ।
स्थानभ्रष्टा न शोभन्ते दन्ताः केशा नखा नराः ॥ २९ ॥
लोभात् क्रोधः प्रभवति लोभात् कामः प्रजायते ।
लोभान्मोहश्च नाशश्च लोभः पापस्य कारणम् ॥ ३० ॥
वृत्यर्थं नातिचेष्टेत सा हि धात्रैव निर्मिता ।
गर्भादुत्पतिते जन्तौ मातुः प्रस्रवतः स्तनौ ॥ ३१ ॥
शरीरस्य गुणानां च दूरमत्यन्तमन्तरम् ।
शरीरं क्षणविध्वंसि कल्पान्तस्थायिनो गुणाः ॥ ३२ ॥
शुचित्वं त्यागिता शौर्यं सामान्यं सुख-दुःखयोः ।
दाक्षिण्यं चानुरक्तिश्च सत्यता च सुहृद्गुणाः ॥ ३३ ॥
स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम् ।
परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते ॥ ३४ ॥
सा भार्या या गृहे दक्षा सा भार्या या प्रजावती ।
सा भार्या या पतिप्राणा सा भार्या या पतिव्रता ॥ ३५ ॥
न सा भार्येति वक्तव्या यस्या भर्ता न तुष्यति ।
तुष्टे भर्तरि नारीणां सन्तुष्टाः सर्वदेवताः ॥ ३६ ॥
हा हा पुत्रक नाधीतं गतास्वेतासु रात्रिषु ।
तेन त्वं विदुषां मध्ये पङ्के गौरिव सीदसि ॥ ३७ ॥

कतिपय परीक्षोपयोगी प्रकाशन

